लायसेंस

मण्टो

प्रकाशक

नारायणदत्त सहगल एण्ड सन्ज़

दरीबा कलाँ, दिल्ली

मण्टो

कृष्णचन्द्र

लम्बा, तिरछा, चपटा, गोरा-गोरा, हाथ के ऊपर नसें उभरी हुईं। गर्दन की घण्टी बाहर निकली हुई। सूखी टाँगों पर बड़े-बड़े पाँव, लेकिन बेडौल नहीं। स्वच्छता बनाए रखने में स्त्रियों की-सी तत्परता। चेहरे पर झुँझलाहट। आवाज़ में बेचैनी, लिखने में व्याकुलता, आदाब में कटुता, चलने में शीघ्रता, सआदत हसन मण्टो को पहली बार देख कर कुछ इन बातों का अहसास होता है। लेकिन दूसरे ही क्षण इन बातों के अहसास पर एक दूसरा अहसास छा जाता है और वह है उसका चौड़ा माथा। मण्टो के माथे का चौखटा उसके दिमाग़ की तरह महान है और विचित्र भी। आम तौर पर प्रतिभाशाली व्यक्तियों के माथे का चौखटा उन तस्वीरों से ज़्यादा मिलता जुलता है जो पश्चिमी चित्रकार शैतान को चित्रित करने के लिए बनाते हैं। यानी चौड़ा माथा और बाल कनपटियों के पास से पीछे की तरफ़ ग़ायब होते हुए। मण्टो का माथा शैतान से मिलता जुलता नहीं है। मण्टो का माथा आयताकार है। सिनेमा के पर्दे की तरह। नीचे से कम चौड़ा है और ऊपर से ज्यादा। और बाल सीधे, लम्बे और घने हैं और आँखों में एक वहशी चमक है। एक निर्भय कटुता है। एक ऐसी सूझ-बूझ है जैसे मण्टो मौत के दरवाज़े के अन्दर झांक कर लौट आया हो। मैंने मण्टो से इस सिलसिले में कभी नहीं पूछा। सुना है कि वह एक बार क्षय या ऐसी ही किसी भयंकर बीमारी में फँस गया था—

बहरहाल उसकी बड़ी-बड़ी वहशतनाक आँखों का दर्द और जलन इस बात की गवाही देते हैं कि मण्टो ज़िन्दगी की मंज़िल से बहुत आगे जाके वापस आया है। सम्भव है कोई बीमारी न हो, खतरनाक इश्क़ रहा हो—इश्क़ भी एक बीमारी है—कुछ भी हो, मण्टो के लिए यह अनुभव मँहगा नहीं रहा। इस अनुभव ने मण्टो को कुन्दन बना दिया।

मण्टो जवाहरलाल और इक़बाल की तरह कश्मीरी पण्डित है। अर्से से उसका खानदान अमृतसर में आबाद था। उसके दोनों बड़े भाई हिन्दुस्तान से हिजरत कर चुके हैं। बड़ा भाई कीनिया में बैरिस्टर है और वहाँ की लेजिस्लेटिव असेम्बली का सदस्य भी है। उनके बड़े भाई को मैंने देखा है। शरई दाढ़ी और बेहद मुत्तक़ी पारसा और नमाज़ी मुसलमान। मण्टो वह सब कुछ है, जो उसके दोनों बड़े भाई नहीं हैं। वह अपने बुज़ुर्गों की इज्ज़त करता है, मुहब्बत नहीं। आदाब में, अखलाक़ में, दृष्टिकोण में इतना गहरा विरोध था कि मण्टो ने बचपन ही से अपना घर छोड़ दिया था और अपने लिए नई राह तलाश करनी शुरू कर दी थी। अलीगढ़, लाहौर, अमृतसर, बम्बई, देहली। इन स्थानों ने मण्टो के जीवन के विभिन्न रंग देखे हैं। रूसी साहित्य का पुजारी मण्टो, चीनी साहित्य का प्रेमी मण्टो, कटुता और निराशा का शिकार मण्टो, गुमनाम मण्टो, बदनाम मण्टो, भटियारखानों, शराबखानों और क़हवाखानों में जाने वाला मण्टो और फिर घरेलू मण्टो, मुहब्बत करने वाला मण्टो, दोस्तों की मदद करने वाला मण्टो, तुर्शी और तल्खी को मिठास में समोने वाला मण्टो, उर्दू का सुप्रसिद्ध साहित्यकार मण्टो—इन स्थानों ने मण्टो को हर रंग में देखा है। और मण्टो ने भी इन स्थानों को खूब देखा है। मण्टो ने जीवन के प्रेक्षण में स्वयं को मोमबत्ती की तरह पिघलाया है। वह उर्दू साहित्य का एक-मात्र शंकर है—जिसने जीवन के विष को स्वयं घोल कर पिया है और फिर उसके स्वाद को, उसके रंग को खोल खोल कर बयान किया है। लोग बिदकते हैं, डरते हैं मगर उसके प्रेक्षण की वास्तविकता और उसकी समझ की सत्यता से इन्कार नहीं कर सकते। विष पीने से यदि शंकर का गला नीला होगया था तो मण्टो ने भी अपना स्वास्थ्य गँवाया है। उसकी

ज़िन्दगी इंजक्शनों पर निर्भर होकर रह गई है। यह विष मण्टो ही पी सकता था। और कोई दूसरा होता तो उसका दिमाग़ चल जाता। मगर मण्टो के दिमाग़ ने विष को भी हज़म कर लिया है, उन दर्वेशों की तरह जो पहले गाँजे से शुरू करते हैं और आख़िर में विष खाने लगते हैं और सांपों से अपनी ज़ुबान डसवाने लगते हैं। मण्टो के साहित्य की तेज़ी और तीव्रता और उसकी ज़ुबान की नश्तरज़नी इस बात का सबूत है कि मण्टो की फ़क़ीरी आख़री मंज़िल पर पहुँच चुकी है।

मण्टो से मिलने से पहिले—मैंने मण्टो की कहानियाँ पढ़ी थीं। साप्ताहिक 'मुसव्विर', बम्बई में मण्टो की कहानियां प्रकाशित होती थीं। ये कहानिया इतनी नुकीली थीं, इतने विचित्र अन्दाज़ में लिखी गई थीं, इतनी टेढ़ी थीं कि मानना पड़ा। 'शोशो', 'खुशिया', 'दिवाली के अड्डे'। शायद ये कहानियाँ मैंने 'मुसव्विर' ही में पढ़ी थीं और मण्टो को उनके बारे में 'प्रशंसात्मक-पत्र' भी लिखे थे। उन दिनों मण्टो बम्बई में रहता था। साप्ताहिक 'मुसव्विर' का सम्पादन करता था और 'कीचड़' की कहानी, पटकथा और संवाद भी लिख रहा था। प्रेमचन्द के बाद मण्टो पहला साहित्यकार है—जिसने साहित्य से फ़िल्म की तरफ़ प्रस्थान किया है। शायद मण्टो के लिए यह कहना सही न होगा। इसलिए कि साहित्यिक क्षेत्र में उसकी प्रसिद्धि उसके फ़िल्मी जीवन के बाद शुरू होती है। शायद मण्टो वह पहला साहित्यकार है जो फ़िल्म से साहित्य की तरफ़ आया और अपनी प्रसिद्धि की बुनियादें मज़बूत करके फिर फ़िल्म की तरफ़ चला गया उसकी हर बात विचित्र है।

इन कहानियों को पढ़ने के बाद मैंने उसकी कहानी 'लालटैन' पढ़ी जो बटूर से सम्बंधित है जहाँ मण्टो शायद अपनी भयंकर बीमारी के दिनों में रहा था। मुझे तो इस कहानी का अधिकांश भाग मण्टो के जीवन से सम्बधिन्त मालूम होता है। उसकी छोटी-छोटी घटनाओं और अन्त में जो उदासीनता झलकती है, वह ख़ुद रूमानी मण्टो के जीवन का भाग मालूम होती है। उसके बाद मानो मण्टो की कहानियों से किसी ने सारी कोमलता, नरमी और मिठास छीन ली। या शायद उसने स्वयं इन विशेषताओं को अपनी कहानियों से

धक्के मार-मारकर निकाल दिया हो। मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि किसी कष्ट सहन करने की भावना से प्रभावित होकर ऐसा करता रहता हो। निकलो, निकलो, निकलो। जिन्दगी बहुत तल्ख है। उसमें इन भावनाओं का गुज़र नहीं। बेहतर है कि यहां से निकल जाओ। उसकी अधिकाँश कहानियों में ऐसा मालूम होता है मानो वह इन भावनाओं को जानबूझ कर धक्के मारकर बाहर निकाल रहा हो। कभी बच्चों की तरह बिसूरने लगता है। कभी कटु स्वर में, बहुत ही अप्रिय स्वर में उनका मज़ाक़ उड़ाता है। और कोई नहीं समझता कि इस कटुता, विषैलापन और व्यंगात्मक हंसी के पीछे कितनी नरमी और कोमलता और ज़िन्दगी की चाहत छुपी हुई है। ऐसी चाहत जिसकी भूख अमर है और कभी नहीं मिटती, मिटाये नहीं मिटती। मण्टो आदिकाल से भूखा है। उसकी हर कहानी में इंसानी मुहब्बत की पुकार है। आप उसकी बातों पर न जाइये। वह हज़ार बार कहता है—मुझे इंसानों से मुहब्बत नहीं है। मैं एक गले-सड़े कुत्ते के पिल्ले से मुहब्बत कर लूँगा मगर इंसानों से नहीं। वह कहेगा—मुझे दोस्ती, मेहरबानी, दया किसी पर भरोसा नहीं। मेरा विश्वास शराब है। यह प्रगतिशीलता सब बकवास है। मैं तरक्क़ीपसन्द नहीं हूँ। मैं सिर्फ़ मण्टो हूँ और शायद वह भी नहीं हूँ। वह ये सब बातें कहता है तकल्लुफ़न। कभी आपका जी जलाने के लिए—मुँह चिढ़ाने के लिए। अपने आपको धोका देने के लिए भी। वह ये सब बातें कहता है लेकिन उसकी आँखें कुछ और कहती हैं। उसका क़लम कुछ और कहता है। और हमारा सौभाग्य है कि उसकी ज़ुबान की तरह उसका क़लम उसके वश में नहीं है। वह अपनी इंसानी हमदर्दी, अपनी तरक्क़ीपसन्दी, अपने मानव-प्रेम पर पर्दा डालने की हज़ार कोशिश करता है। अपनी कहानियों पर यह मज़ाक़ का रोग़न चढ़ाता है, लेकिन उसका क़लम उसके क़ाबू में नहीं है—और हर कहानी के पीछे इंसानी मुहब्बत उबली पड़ती है।

उन दिनों मैं 'नये ज़ाविये' का पहला भाग सम्पादित कर रहा था। मैंने मण्टो से उसमें भाग लेने के लिए कहा तो उसने बहुत जल्द मुझे अपनी वह कहानी भेजी जो आज तक मेरे विचार से अपनी जगह उर्दू की श्रेष्ठ

कहानी है। और साहित्य में उसका स्थान वही है जो राजेन्द्रसिंह बेदी के, 'कृष्ण' और हयातुल्ला अंसारी की 'आखरी कोशिश' का है। इतनी अच्छी कहानियां अब उर्दू में मुश्किल से लिखी जा सकेंगी। मैंने रूसी शाहकार 'यामा' भी पढ़ा है और इसी विषय पर कई एक फ्रांसीसी कहानियां भी पढ़ी हैं, और 'उमराव जान अदा' के किरदार का भी अध्ययन किया है। लेकिन 'हतक' की हीरोइन की टक्कर का एक पात्र भी मुझे इन उपन्यासों और कहानियों में नहीं नज़र आया। एकएक करके मण्टो ने मौजूदा समाजी निज़ाम के अन्दर बसने वाली वेश्या की ज़िन्दगी के छिलके उतारकर अलग कर दिये हैं। इस प्रकार कि इस कहानी में न केवल वेश्या का शरीर बल्कि उसकी आत्मा भी नंगी नज़र आती है। एक शीशे की तरह आप उसके आर पार देख सकते हैं। देख रहे हैं। किस बेदर्दी और निर्दयता से मण्टो ने उसे नंगा किया है। लेकिन इस बदसूरत ख़ाके का हर रंग बदसूरत होते हुए भी एक नये सौन्दर्य का निर्माण करता है। वेश्यावृत्ति से मुहब्बत नहीं होती। सौगन्धी और उसके जीवन पर दया भी नहीं आती लेकिन सौगन्धी की मासूमियत और उसके औरतपन पर और इसलिए ज़िन्दगी और उसकी चाहत और उसके निर्माण पर विश्वास पैदा हो जाता है और यही सच्चे और अमर साहित्य का महान जौहर है।

हतक के बाद फिर तो मण्टो की कई एक कहानियाँ मासिक पत्रों में प्रकाशित हुईं और बिजली की चमक की तरह मण्टो का नाम पढ़े-लिखे लोगों के दिलों में चमक उठा। इन्ही दिनों में ऑल इण्डिया रेडियो, देहली से मुझे बुलावा आया और मैं लाहौर से देहली चला गया। यहाँ मुझे आये हुए एक महीना भी न हुआ था कि मण्टो का पत्र आया कि वह देहली आ रहा है और मेरे यहाँ ठहरेगा। मुझे तीस हज़ारी में एक छोटा सा मकान मिल गया था और एक नौकर भी था। इसलिए कोई फ़िक्र की बात न थी। मैं शाम के वक्त छः बजे के लगभग दफ्तर से लौटकर अपने मकान के बाहर टहल रहा था कि एक साहब लम्बे, दुबले, तिरछे गोरे-गोरे से आये, एक चमड़े का बैग

बग़ल में दबाये और मेरी तरफ़ देखकर मुस्कराने लगे। हम दोनों ने यकायक एक दूसरे को पहचान लिया।

तुम क्रिशनचन्दर हो—आगंतुक ने कहा।

मण्टो ! मैंने जवाब दिया और हम दोनों एक-दूसरे से लिपट गये।

मण्टो एक लम्बा-सा ओवर कोट पहिने हुए था। कमरे के अन्दर जाकर मण्टो ने ओवर कोट उतार दिया और बैग को सोफ़े पर पटक दिया। और खुद एक कुर्सी पर पांव सिकोड़ कर इस तरह बैठ गया कि जिस तरह कन्हैयालाल जेब कतरे का पार्ट अदा करते वक़्त बैठता है। मुझे बरबस हँसी आ गई। मैंने कहा—लो सिगरेट पियो।

कोई घटिया क़िस्म का सिगरेट था, जो मैंने उसे पेश किया। लाहौल वलाक़ूवत ! मण्टो बोला—अरे यह सिगरेट तुम पीते हो ? हैरत है। ऐसे सिगरेट पीकर तुम इतने अच्छे अफ़साने कैसे लिख लेते हो ! यह सिगरेट पीकर तुम सिर्फ़ दफ़्तर की क्लर्की कर सकते हो ! समझे, किशनचन्दर एम० ए०। लो अब यह सिगरेट पियो। ५५५ और भूल जाओ उन सिगरेटों को।

नौकर ने गरम-गरम फुल्कियाँ प्लेट में सजा कर भेज दीं। मैंने कहा—ये फुल्कियां घी में तली गई हैं। खालिस घी पंजाब से आया है।

फुल्कियाँ और घी में ? मण्टो चिल्लाया। लाहौल वलाक़ूवत ! अरे मियाँ, तुम तो निरे घामड़ हो। अरे भाई मेरे, कौन बेवक़ूफ़ फुल्कियाँ घी में तलता है। उससे तो फुल्कियों का मज़ा ही बदल जाता है। तलने के लिए घी नहीं डालडा बेहतर है। डालडा से बेहतर फ्राई और कही नहीं होता। मेरी बीवी को आने दो। फिर तुम्हें फुल्कियाँ खिलाऊँगा। चटपटी और कुरकुरी और ऐसी मज़ेदार जैसे बम्बई की घाटन होती है। कभी बम्बई गये हो ?

मैंने कहा, मैं तो देहली भी पहली बार आया हूँ इससे आगे की दुनिया कैसी है—मालूम नहीं।

बम्बई चलो और छोड़ो यह रेडियो-वेडियो, लो शराब पियो।

यह कहकर मण्टो ने अपने छोटे कोट की जेब से एक बोतल निकाली।

सोलन व्हिस्की नं० १ और उसका काग उड़ाकर बोला, लो जल्दी से लो, गिलास मंगवाओ, देर हो रही है।

अब तक मैंने शराब चखी तक न थी, लेकिन मण्टो का चेहरा इतना कटु था, उसका स्वर इतना तीव्र था कि मैंने सोचा अगर मैंने इंकार किया तो कहीं वह मुझे मार ही न बैठे। मैंने बड़े इत्मेनान से दो गिलास मंगवाये। मण्टो ने शराब उण्डेलनी शुरु की। पूछने लगा, तुम कौन सी शराब पीते हो?

मैंने कहा, ब्राण्डी या फिर—कोई अच्छी सी अंग्रेज़ी व्हिस्की।

कौन-सी अंग्रेज़ी व्हिस्की? मण्टो ने कटुता से कहा, व्हिस्की अंग्रेज़ी नहीं होती, स्कॉच होती हैं। साले अंग्रेज़ शराब तक तो खेंच नहीं सकते, हिन्दुस्तान पर हुकूमत क्या करेंगे।

मेरे जहन में एक अंग्रेजी—स्कॉच व्हिस्की का इश्तेहार आगया—*Vague—Ask for Hague*—मैंने जल्दी से कहा, मुझे हेग बहुत पसन्द है।

सब बकवास है। मण्टो बोला, सोलन व्हिस्की नं० १ सबसे उम्दा है। एक तो पैसे कम और फिर मजे में और नशे में हेग से बेहतर है। आइन्दा से हेग मत पिया करो। सिर्फ सोलन व्हिस्की नं० १ समझे!

मैंने कहा, ठीक है। आइन्दा से हेग नहीं पियूँगा।

और डालूँ? मण्टो ने मेरे गिलास की तरफ़ देखते हुए कहा, जो लगभग चौथाई भर चुका था।

मैंने कहा, और नहीं ···· जैसे तुम्हारी मर्ज़ी ······और डाल दो।

तो क्या पटियाला पियोगे? मण्टो ने हैरत से मेरी तरफ देखते हुए कहा।

मैंने जल्दी से कहा, हाँ। वास्तव में मुझे मालूम ही न था कि पटियाला पेग क्या होता है। हाँ कह देने से छुटकारा मिल गया।

बड़े पियाक हो। मण्टो ने मुझे शक की नज़र से देखते हुए कहा।

मैं तो पहले ही पेग में निहाल हो गया। उसके बाद दूसरा मैंने नहीं लिया और न मण्टो ने आग्रह किया। क्योंकि वह मेरी हालत देख चुका था।

मैंने स्वीकार किया कि यह पहली बार शराब पी रहा हूँ। इस पर मण्टो ने शराब के फायदे गिनाये। गुनाह का मजा शराब में है। औरत का रंग शराब में है। अदब की चाश्नी शराब में है। दुनिया की गन्दी चीज़ों से मुक्ति शराब में है। भई तुम कब तक पण्डित बने रहोगे। आखिर तुम्हें साहित्य का सृजन करना है कोई स्कूल के बच्चों को तो पढ़ाना है नहीं। जिन्दगी नहीं देखोगे, गुनाह नहीं करोगे, मौत के पास नहीं जाओगे, ग़म का मज़ा नहीं चखोगे, सोलन ह्विस्की नं० १ नहीं पियोगे तो क्या तुम ख़ाक लिखोगे ?

बोतल समाप्त करने के बाद यह भी आउट हो गया। अब उसका तक़ाज़ा यही था कि मैं क्रिशनचन्दर एम० ए० क्यों हूँ ? सिर्फ़ क्रिशनचन्दर क्यों नहीं ?

फिर मुझे चिढ़ाने के लिए बार बार कहने लगा, क्रिशनचन्दर एम० ए० क्रिशनचन्दर एम० ए०, क्रिशनचन्दर एम० ए०।

और मैंने बदला चुकाने के लिए उससे कहा, तुम यह बताओ, तुम कौन हो ? मिण्टो हो, या मण्टो हो या मुण्टो हो। यह मण्टो क्या बला है। मिण्टो, मण्टो, मुण्टो ?

वह कहने लगा क्रिशनचन्दर एम० ए० क्रिशनचन्दर एम० ए० क्रिशनचन्दर एम० ए०................

थोड़ी देर तक इस तरह गरदान करते हुए हम दोनों सो गये। मैं सोफे पर और वह उसी कुर्सी पर उसी तरह सो गया। गर्दन टांगों में दबाये हुए। और सुबह तक उसी तरह सोया रहा। सुबह जब मैं जागा तो वह उसी तरह सो रहा था। मेज़ पर बोतल औंधे मुँह पड़ी थी। गिलास ख़ाली थे और फुल्कियाँ बासी थीं।

मैंने मण्टो को जगाया, उठो !

वह उठते ही कहने लगा, अगर इस वक्त भी थोड़ी सी मिल जाय तो शराब का स्वाद ज़ुबान से दूर हो जाय। तुम जानते हो, शराब के स्वाद को दूर करने का तरीक़ा यही है कि सुबह उठते ही आदमी फिर दो घूंट शराब के पीले। समझे ! शराब मंगाओ। फिर मुझे ऑल इण्डिया रेडियो जाना है।

वह क्यों ? मैंने पूछा।

मैं यहाँ ड्रामे लिखने के लिए बुलाया गया हूँ।

और तुम तो मुझे बम्बई भेज रहे थे रात को। फिल्मों में काम करने के लिए।

गोली मारो बम्बई को और यह बकवास बन्द करो और शराब मंगाओ। यह कह कर उसने अपना बैग खोला और एक कहानी निकालकर मुझे दी। इसे ज़रा पढ़ लो। मैं अपनी कहानियां किसी को नहीं दिखाता। अपने बाप को भी नहीं। बस तुम्हें दिखा सकता हूँ। यद्यपि तुम भी कहानियाँ बहुत अच्छी नहीं लिखते मगर एक बात है उनमें। उसे मानता हूँ, समझे! क्रिशनचन्दर एम० ए०!

२

रेडियो पर हम दो साल इकट्ठे रहे। बाद में उपेन्द्रनाथ अश्क भी आ गये। मैं ड्रामा प्रोड्यूसर था। मण्टो और अश्क दोनों ड्रामे लिखते थे और मुझे इन दोनों के बीच में संतुलन रखना पड़ता था। दोनों अच्छे अदीब, दोनों अपनी आत्मश्लाघा पर क़ायम। नतीजा यह हुआ कि इन दिनों बहुत अच्छे रेडियाई ड्रामे लिखे गये। और ये ड्रामे किसी दूसरी भाषा से अनुवाद नहीं किये गये थे। ये बेहतरीन दिमाग़ों की बेहतरीन रचना थे और इन ड्रामों से उर्दू अदब में आधुनिक ड्रामों की उन्नति हुई। बल्कि इसके बाद तो उपेन्द्रनाथ अश्क ने अपनी सारी शक्ति ड्रामे लिखने में ही लगादी। वह बड़े मज़े का ज़माना था। हम तीनों में अदबी बहसें होतीं, नोंक-झोंक होती। कहानियां लिखी जातीं, ड्रामे लिखे जाते। लेख एक दूसरे को सुनाये जाते। फिर कुछ दिनों के लिए बेदी भी आगये। अहमद नदीम क़ास्मी भी और एन० एम० राशिद भी और इन सबने मिलकर उर्दू साहित्य में एक नये अध्याय की वृद्धि की। नदीम ने एक ऑपेरा लिखा। बेदी ने पहली बार ड्रामा लिखने की तरफ़ ध्यान दिया और राशिद की 'मावरा' भी इन्हीं दिनों प्रकाशित हुई। देवेन्द्र सत्यार्थी भी तशरीफ़ लाये। यों ही घूमते घामते। दो-एक दिन तो मण्टो से ख़ूब गाढ़ी छना, मगर मण्टो के स्वभाव की कटुता सत्यार्थी की मधुरता के विपरीत थी। ज़्यादा देर तक न निभ सकी। मण्टो ने अपनी एक कहानी में सत्यार्थी पर चोट

की। सत्यार्थी ने 'नये देवता' में उसका जवाब दिया। मण्टो को उसका दुख ज़रूर हुआ। दो-तीन दिन तक उस कहानी का असर रहा। अन्त में उसने कहा—ये नये देवता ....ठीक है, चलो हटाओ। मैंने कभी उससे इस विषय पर बात नहीं की। मण्टो अक्सर मुझसे कहता था—मुझे तुम्हारी यह हरकत पसन्द नहीं। मैं तुमसे लड़ना चाहता हूँ और तुम हमेशा टाल जाते हो। यह नामाक़ूलियत मुझे पसन्द नहीं। मैंने कहा, लड़ने के लिए क्या अश्क काफ़ी नहीं। अश्क और मण्टो की नोंक-झोंक खूब होती थी और अक्सर दुनिया के हर विषय पर हो जाती थी। और ऐसी-ऐसी साहित्यिक बाल की खाल निकलती थी कि दिन भर जी लगा रहता था।

मण्टो के पास उर्दू टाइप राइटर था और मण्टो अपने सब ड्रामे इसी तरह लिखता था कि काग़ज़ को टाइप राइटर पर चढ़ाकर बैठ जाता था और और टाइप करना शुरू कर देता। मण्टो का विचार है कि टाइप राइटर से बढ़कर विचारोत्पादक मशीन और कोई नहीं है। शब्द गढ़े-गढ़ाये, मोतियों की चमक लिये, साफ़-सुथरे मशीन से निकलते आते हैं। क़लम की तरह नहीं कि निब घिसी हुई है, तो रोशनाई कम है, काग़ज़ पतला है। एक अदीब के लिये टाइप राइटर इतना ज़रूरी है कि जितनी पति के लिए पत्नी। और एक उपेन्द्रनाथ अश्क और क्रिशनचन्दर हैं कि क़लम घिस-घिस किये जारहे हैं। अरे मियां कभी महान साहित्य की सृष्टि आठ आने के पैन होल्डर से भी हो सकती है। तुम गधे हो—निरे गधे।

मैं तो ख़ैर चुप रहा मगर दो-तीन दिन के बाद हम लोग क्या देखते हैं कि अश्क साहब अपनी बग़ल में एक नया उर्दू का टाइप राइटर दबाये चले आरहे हैं। और आपने मण्टो की मेज़ के सामने अपना टाइप राइटर सजा दिया और खटखट करने लगे।

अरे उर्दू के टाइप राइटर से क्या होता है। अँग्रेज़ी टाइप राइटर भी होना चाहिये। कृष्ण तुमने मेरा अँग्रेज़ी का टाइप राइटर देखा है। देहली भर में ऐसा टाइप राइटर कहीं नहीं होगा। एक दिन लाकर तुम्हें दिखाऊँगा।

अश्क ने इस पर न सिर्फ़ अँग्रेज़ी का बल्कि हिन्दी का टाइप राइटर भी ख़रीद लिया। अक्सर जब वह आता तो चपरासी एक छोड़ तीन टाइप राइटर उठाये उसके पीछे दाखिल होता और अश्क मण्टो के सामने से गुज़र जाता। क्योंकि मण्टो के पास सिर्फ़ दो टाइप राइटर थे। आख़िर मण्टो ने गुस्से में आकर अपना अँग्रेज़ी का टाइप राइटर भी बेच दिया। और फिर उर्दू टाइप राइटर को भी वह नहीं रखना चाहता था। मगर उसे काम में थोड़ी आसानी हो जाती थी इसलिए उसने उसे नहीं बेचा। मगर तीन टाइप राइटरों की मार वह कब तक खाता। आख़िर उसने उर्दू का टाइप राइटर भी बेच दिया। कहने लगा, लाख कहो, वह बात मशीन में नहीं आ सकती, जो क़लम में है। काग़ज़ क़लम और दिमाग़ में जो रिश्ता हैं, वह टाइप राइटर से क़ायम नहीं हो सकता। एक तो कम्बख़्त खटाखट शोर किये जाता है मुसलसल—लगातार। और क़लम किस रवानी से चलता है। मालूम होता है रोशनाई सीधी दिमाग़ से निकलकर काग़ज़ की सतह पर बह रही है। हाय वह शेफ़र का क़लम, कितना ख़ूबसूरत है। इसका नुकीला स्ट्रीमलाइन सौन्दर्य देखो, जैसे बान्द्रा की क्रिश्चियन छोकरी।

और अश्क ने जलकर कहा, तुम्हारा भी कोई दीन-ईमान है। तब तक टाइप राइटर की तारीफ़ करते थे। आज अपने पास टाइप राइटर है तो क़लम की तारीफ़ करने लगे। वाह! यह भी कोई बात है। हमारे एक हज़ार रुपये खर्च हो गये।

मण्टो ज़ोर से हँसने लगा।

एक दिन मण्टो बहुत ख़ुश-ख़ुश मेरे पास आया। कहने लगा, भई यह अहमद नदीम क़ास्मी का ख़त आया है। तुम्हें भी सलाम लिखा है। ज़रा इसे पढ़ लो।

मैंने ख़त पढ़ा। बड़ा प्यारा ख़त था। मगर मण्टो ने ख़त मुझे इसलिए पढ़ने के लिए दिया कि उसमें मण्टो की अफ़सानानिगारी की तारीफ़ की गई थी। उसने मण्टो को यह ख़त मुझे दिखाने पर मजबूर कर दिया था। ख़त का आख़री वाक्य यह था—"आप अफ़साना निगारी के बादशाह हैं।"

खत पढ़कर मैंने अपनी मेज़ की दराज़ खोली और उसमें से एक खत निकाला। यह खत भी अहमद नदीम क़ास्मी ने लिखा था और आज ही मुझे मिला था। अभी कोई मण्टो के आने से चन्द मिनट पहले उसे पढ़कर मैंने मेज़ की दराज़ में रख लिया था। मैंने वह खत मण्टो को दे दिया। लो भई यह एक खत उन्हीं साहब ने मुझे भी भेजा है। इसे तुम पढ़लो।

मेरे खत में नदीम ने मेरी कहानियों की तारीफ़ की थी। खत का आखिरी वाक्य था—"आप अफ़साना निगारी के शहनशाह हैं।"

मैंने कहा, मण्टो तुम तो सिर्फ़ बादशाह हो, हम शहनशाह हैं। तुमसे बड़े हैं। बोलो, अब क्या कहते हो।

फिर हम दोनों हँसने लगे। नदीम ने हम दोनों के साथ कैसा अच्छा मज़ाक़ किया था। मण्टो ने कहा आओ हम दोनों उसे एक खत लिखें और उसे यहाँ बुलायें।

पढ़ी-लिखी शरीफ़ घराने की लड़कियाँ उस समय तक रेडियाई ड्रामों में भाग लेने से घबराती थीं। जब मैं दिल्ली आया तो सिर्फ़ तीन-चार लड़कियाँ ही ऐसी थीं जो हमारे ड्रामों में हिस्सा ले सकती थीं। और जब नये ढंग के ड्रामे लिखे जाने लगे जिनमें मध्यम या उच्चवर्ग के जीवन का चित्रण होता तो आवश्यकता अनुभव हुई कि अपने ग्रुप को बढ़ाया जाय। चुनांचे मैंने बड़ी कोशिश से दस-बारह लड़कियों का ग्रुप बना लिया था जो हमारे ड्रामों में भाग लिया करती थीं। एक दिन मण्टो ने मुझ से पूछा, देखो भई तुम अपने ड्रामे के लिए कितनी लड़कियाँ ला सकते हो ?

कितनी, क्या मतलब, जितनी कहो। अब दून की मत लो। मैं तुमसे पूछता हूँ। पूछते काहेको हो। तुम ड्रामा लिखो। उसमें जितनी चाहो लड़-कियां भरलो। मैं ला दूँगा।

अच्छा तो मैं एक ड्रामा लिखूँगा। उसमें सिर्फ़ लड़कियां ही लड़कियाँ होंगी। छब्बीस-सत्ताईस लड़कियाँ रखूँगा।

मैंने कहा, और उसका नाम रखो—'एक मर्द'। ड्रामा लिखा गया। ब्रॉडकास्ट भी हुआ। हर पात्र के लिए लड़की भी मिल गई।

इसी तरह हर चीज़ में स्पर्द्धा से काम लिया जाता। मैंने एक अच्छी कहानी लिखी तो मण्टो ने भी और फिर अश्क ने भी। और राशिद ने भी एक नज़्म कह डाली। मण्टो ने ड्रामा लिखा तो अश्क भी ज़रूर लिखेंगे और फिर मैं भी इन लोगों की देखादेखी लिखने की कोशिश करता। मेरे सब रेडियाई ड्रामे जिनमें 'सराय के बाहर' भी शामिल है, इन्हीं दिनों की पैदावार हैं, जब मेरा और मण्टो का साथ था। वो दिन इतने अच्छे थे कि आर्थिक कठिनाइयों के बावजूद हम लोग बहुत खुश रहते थे। और बहुत लिखते थे। और जो कुछ लिखते थे ताज़गी और तवानाई के साथ लिखते थे। मुर्झाये हुये दिलों से नहीं। इन्हीं दिनों में मण्टो ने अपनी अदबी ज़िन्दगी के बेहतरीन ड्रामे और अफ़साने लिखे हैं। उन दिनों उसके क़लम में बला की रवानी थी और वह हर दूसरे-तीसरे दिन एक नई चीज़ कोई ड्रामा या अफ़साना लिख डालता था। लड़ने-झगड़ने के बाद भी हम तीनों में इनका सहयोग था कि दिन-रात इकट्ठे रहते और अपने प्रोग्राम को बेहतर बनाने की तरकीबें सोचा करते। रेडियो आर्टिस्ट खास तौर पर मण्टो को बहुत चाहते थे। मण्टो हमारी रिहर्सल में कम आता था, लेकिन जब आता तो अपनी फुलझड़ियों से कुछ ऐसी ताज़गी पैदा कर देता कि जिसका असर घण्टों तक रहता। मण्टो के ड्रामे उन आर्टिस्टों ने जिस कोशिश और लगन से पेश किये हैं और वे जनता में कितने लोकप्रिय हुए हैं इसका अनुमान इस बात से हो सकता है कि मण्टो को अपने रेडियाई ड्रामों का एक संग्रह उन कलाकारों के नाम समर्पित किया है। इसी दौरान में मण्टो ने और मैंने मिलकर एक फ़िल्मी कहानी लिखी। मेरे लिए यह पहला फ़िल्मी प्रयास था जिसमें मैंने हिस्सा लिया हो। 'बंजारा' उसका नाम था। देहली में किसी डिस्ट्रीब्यूटर के हाथ उसको बेच दी थी क्योंकि उन दिनों हम लोग नये सूट सिलवाना चाहते थे। और अभी एक लम्बे अरसे तक किसी पब्लिशर से पैसों के मिलने की आशा न थी। लेकिन इस फ़िल्मी कहानी का दिलचस्प पहलू हमारे सूट न थे। बल्कि हमारे लिए कम-से-कम एक अनुभव था। कहानी सुनकर सेठ ने कहा—

कहानी बहुत अच्छी है। हम लोग खरीद लेंगे। लेकिन मण्टो साहब

आपने फिल्म में मिल के मैनेजर को बहुत बुरा बताया है। उसे अच्छा दिखाना चाहिये। वरना मजदूरों पर बुरा असर पड़ता है।

तो उसे अच्छा दिखा देंगे।

मैं आश्चर्य से मण्टो की तरफ़ देखने लगा। मैं कहने वाला था, यह कैसे हो सकता है। उसने मुझे हाथ के इशारे से रोक दिया।

और सेठ साहब फिर बोले, और यह मैनेजर की बीवी है। यह अगर उसकी कुँवारी बहन हो और हीरो से प्रेम करे, एक वैम्प के माफ़िक़, कैसा रहेगा मण्टो साहब।

बहुत अच्छा, बहुत अच्छा, मण्टो ने कहा। मैं फिर हैरान रह गया। यह वही मण्टो है जो किसी के लिए अपनी एक सतर तो क्या एक अक्षर नहीं बदल सकता। उसकी कहानियाँ ज्यों-की-त्यों प्रकाशित होनी चाहियें। वरना वह कहानी वापस ले लेगा। क्या यह वही मण्टो है। मैं हैरत से उसकी तरफ़ तकने लगा।

जब हम सेठ से मिलकर बाहर आगये तो मण्टो ने कहा, भई यह साहित्य नहीं है। यह फिल्म है जो पढ़े-लिखे लोगों के हाथ में नहीं है। हमारे अफ़साने परखने वाले मौलाना सलाउद्दीन हैं, कलीमुल्ला हैं, हामिदअली खाँ हैं। वह सारूभाई टोकरजी पटेल या मंगू, भंगू, जंगू एण्ड ब्रादर्स नहीं हैं। इसलिए फ़िल्म में माँ को बहन, बहन को माशूक़ और माशूक़ को वैम्प बना देना हमारे लिए बायें हाथ का खेल है, समझे? अदब से साहित्य सेवा करो और फ़िल्म से रुपया कमाओ। अब बोलो, तुम्हें सूट चाहिये या नहीं?

चाहिये।

तो फ़िल्मी कहानी में परिवर्तन जरूर होंगे।

जरूर होंगे भई!

स्वभाव, शरीर और आत्मा से मण्टो आज भी कश्मीरी पण्डित है। बहुत सी बातों में वह अश्क से मिलता-जुलता है। मैं जानता हूँ इसे पढ़कर उसे बड़ी कोफ़्त होगी। मगर यह सच्चाई से दूर नहीं। क्योंकि अश्क भी ब्राह्मण है—पण्डित है। दोनों लम्बे, दुबले-पतले हैं। दोनों दिन-रात इंजक्शनों की फ़िक्र

में रहते हैं। दोनों में ब्राह्मणों की हठधर्मी, ब्राह्मणों की ज़िद, उनकी बुद्धिमानी और उनका चिड़चिड़ापन पाया जाता है। दोनों बहुत बातें करते हैं। हाँ मण्टो की बातों में अनोखापन ज़रा अधिक होता है। दुनिया के किसी विषय पर उससे बातचीत कीजिये। वह उस पर नये ढंग से बात करेगा। आम रास्तों से बचकर चलने की आदत अब उसके स्वभाव की विशेषता बन गई है। वह इसे छोड़ नहीं सकता। अगर आप दास्तोवस्की की प्रशंसा करेंगे तो वह सोमरसेट मॉहम के गुण गायेगा। आप बम्बई शहर की ख़ूबियाँ गिनायेंगे तो वह अमृतसर की तारीफ में कोई कसर बाक़ी नहीं रखेगा। आप जिना या गाँधी की महानता पर विश्वास करते दिखाई देंगे तो वह अपने मुहल्ले के मोची की महानता की तारीफ़ करेगा। आप गोश्त और पालक पसन्द करेंगे तो वह आपको दाल खाने का उपदेश देगा। आप शादी करना चाहेंगे तो वह आपको कुँवारा रहने के लिए कहेगा। आप कुँवारा रहना बेहतर समझेंगे तों वह शादी की उपादेयता से बहस करके आप को शादी के लिए मजबूर करेगा। आप उसके एहसान की तारीफ़ करेंगे तो वह उन्हें बुरा-भला कहेगा। आप उसे गाली देंगे तो वह आपके लिए पाँच सौ रुपये की नौकरी ढूँढ़ता फिरेगा। मण्टो के स्वभाव की तरह उसकी दोस्ती, और दुश्मनी और उसका बदला भी विचित्र है और उसमें सच्ची इंसानियत के बहुत से पहलू पाये जाते हैं। उसकी कठोरता निर्भीकता और कटुता एक प्रकार का आवरण है जो उसने अपने कोमल व्यक्तित्व की रक्षा के लिए अपने ऊपर चढ़ा रखा है। स्वयं को दूसरों से बिल्कुल भिन्न दिखाने की इच्छा वास्तव में इसके सिवाय और कुछ नहीं कि वह अन्दर से बिल्कुल हम जैसा है। बल्कि हम से अधिक घायल है, अधिक भावुक है, अधिक हमदर्द है।

मण्टो को लोगों ने अक्सर हँसते हुए, शराब पीते हुए, अपने दोस्तों का मज़ाक़ उड़ाते हुए: ऐसी वास्तविकताओं और सच्चाइयों का जिन्हें दुनिया स्वीकार करती है, व्यंगात्मक ढंग से झुटलाते हुए देखा है। लेकिन मैंने मण्टो को रोते हुए भी देखा है। वह दुनिया के दुखों पर नहीं रोता। अपने दुखों पर नहीं रोता। उसे इश्क़ नहीं हुआ था। उसे किसी भयंकर बीमारी का सामना नहीं

करना पड़ा था। वह अपने डेढ़ साला बच्चे की मौत पर रो रहा था। जिस-वक्त मुझे खबर मिली मैं दौड़ा-दौड़ा जल्दी से उसके घर गया। मण्टो ने इस तरह अपनी लाल-लाल आँखों से मुझे घूर कर देखा, मानो कह रहा हो—और तुम अब आये हो, जबकि वह मर चुका है—जबकि हम उसे दफ़नाने के लिए ले जा रहे हैं। इससे पहले अपने तुम कहाँ थे ? तुम पहले आते तो शायद मेरा बच्चा बच जाता। उसका गला रुँधा हुआ था—और उसके पपोटे सूजे हुए थे।

उसने मुझसे कहा, कृष्ण, मैं मौत से नहीं डरता किसी की मौत से प्रभावित नहीं होता, लेकिन यह बच्चा। इसलिए नहीं कह ा हूँ कि यह मेरा बच्चा है। इसलिए कहता हूँ—तुम उसे देखते हो ना—इस वक़्त भी कितना मासूम, कितना नया, कितना प्यारा मालूम होता है। मैं सोचता हूँ कि जब कोई नया खयाल अपने पूर्ण होने से पहले—टूट जाता है, उस वक़्त कितनी बड़ी घटना घटती है। हर नया बच्चा एक नया ख़याल है। यह क्यों टूट गया ? अभी मैंने उसकी मौत की तकलीफ़ देखी है। मैं मर जाऊँ, तुम मर जाओ। बुड्ढे, जवान, अधेड़ उम्र के लोग मर जाँय, मरते रहते हैं, लेकिन यह बच्चा ! प्रकृति को किसी नये खयाल को इतनी जल्दी न तोड़ना चाहिये। और फिर वह फूट-फूट कर रोने लगा। उसके ख़ोल के टुकड़े-टुकड़े हो गये थे।

उसके बाद मैंने उसे रोते हुए नहीं देखा। लेकिन उन आँसुओं ने मुझे मण्टो के अन्दर उस गहरे समुद्र में पहुँचा दिया जहाँ से उसके सात्हिय की सृष्टि होती है इस समुद्र का रंग गहरा हरा और सुनहरी है। उसका पानी खारी है। और शार्क मच्छलियाँ और आक्टोपस दूसरे ख़रनाक समुद्री जानवर भी उसकी तह में छुपे हुए हैं। लेकिन यहाँ रंगा-रंग की शादाब चट्टाने भी हैं—जिनके मखमली सब्जों पर सीप के मोती आराम कर रहे हैं। इस विचित्र दृश्य को मैंने केवल एक बार देखा है। वे आपने मोती देखे हैं—जो मण्टो एक ग़वास बन कर अपने दिल की गहराइयों से निकाल कर लाता है। वह उसके ख़ून की जमी हुई बूँदें हैं। जिन पर वह अपने व्यंग से चमका कर एक बिनोदी ढंग से आपके सामको पेश करता है। आप उसकी शैली पर न जाइये। ये सच्चे मोती हैं। यह हमारे देश का दुर्भाग्य है कि हम

उनकी क़दर नहीं करते। कहने को तो हिन्दुस्तान साहित्य, सभ्यता व संस्कृति और ललित कलाओं का भूला रहा है लेकिन-शताब्दियों से हमने अपने महान कलाकारों की ओर से ऐसी लापरवाही बरती है कि अब हमें अपने जुर्म का अहसास तक नहीं होता। मेरे सामने सहगल का उदाहरण है। जब सहगल का देहान्त हुआ तो हमारे देश के महान व्यक्तियों में से किसी के मुँह से दो शब्द अफ़सोस के भी न निकले। और ये वे लोग हैं जो दिन-रात अपनी संस्कृति और सभ्यता और कल्चर को अमरत्व का रोना रोया करते हैं-लेकिन उनसे वही पूछिये कि हिन्दुस्तान के महान कलाकार, साहित्यकार, चित्रकार, शिल्पी कौन-कौन से हैं, और आजकल क्या कर रहे हैं। तो उनकी ज़ुबान गुम हो जायगी और अपनी व्यस्तता का बहाना करके ख़ामोश हो जायेंगे।

मण्टो को अच्छे कपड़ों का शौक़ नहीं। उसे अच्छे घर, अच्छे खाने और अच्छी शराबों का शौक़ है। उसका घर आपको हमेशा ढंग से सजा हुआ मिलेगा। वह एक साफ़-सुथरे पाकीज़ा वातावरण में काम करने का आदी है। सफ़ाई, नियमितता और उम्दगी उसके स्वभाव की विशेषतायें हैं। वह लाउबालीपन, फूहड़पन जो अधिकांश अदीबों के घर में आपको मिलता है, मण्टो के यहाँ नहीं मिलेगा। मण्टो के घर में आपको कोई बात टेढ़ी नहीं मिलेगी। केवल मकान मालिक के सोचने का ढंग टेढ़ा है। टेढ़ा है लेकिन उसमें भी एक स्पष्ट क्रम है जो आम तौर पर कहानी ख़त्म होने पर प्रकट होता है।

मण्टो की कहानियाँ उसके स्वभाव और उसके वातावरण का प्रति-बिम्ब हैं। मण्टो अपनी कहानियों के कपड़े नफ़ासत से तैयार करता है। उनमें कहीं झोल नहीं होता। कहीं कच्चे टाँके नहीं होते। बख़िया उम्दा होती है। इस्त्री किए हुये साफ़-सुथरे अफ़साने। ज़ुबान मंझी हुई, सलीस और सादा। हाँ उसकी कहानियों के रंग विचित्र होते हैं। उनकी काट निराली होती है। उसकी उपमायें और अलंकार अछूते होते हैं। उनमें रस, कवित्व और दया-लुता की विशेषता नहीं होती। वह साहित्य में सौंदर्य का नहीं गणित का क़ायल है। हर चीज नपी-तुली रखता है। वह अपने रूपक, अर्थ, प्रभाव और क्षेत्रफल को खूब समझता है और अचेतन सौंदर्य से नहीं एक क्रम और

ज्योमेट्री की आकृतियों से प्रभाव पैदा करना चाहता है और अक्सर रूमानियत पसन्दों से कहीं ज्यादा कामयाब रहता है।

मण्टो पृथ्वी से बहुत निकट है। इतना निकट है कि अक्सर घास के खोशे में रेंगने वाले कीड़े भी अपनी सब विशेषताओं के साथ उसे नज़र आ जाते हैं। और जो लोग जीवन को एक ऊपरी, उड़ती हुई नज़रों से देखने के आदी हैं वे मण्टो के गहरे प्रेक्षण और तीव्र दृष्टि की प्रशंसा नहीं कर सकते। इसमें शक नहीं कि कहीं-कहीं उसकी हद से बढ़ती हुई आत्मश्लाघा उसे धोखा दे जाती है। या ऐसा होता है कि वह घास के कीड़ों और आकाश में उड़ते हुए बादलों के बीच ज़िन्दगी और अदब का सन्तुलन बरक़रार नहीं रख सकता और व्यक्तिवादी अराजकता के मार्ग पर निकल जाता है। लेकिन ऐसा बहुत कम होता है। और उसकी अधिकांश कृतियाँ महान इंसानियत के उद्देश्य पर पूरी उतरती हैं और अपनी सादगी, सच्चाई और कटुता के अन्दर एक ऐसे मधुर सौंदर्य की सुगन्ध रखती हैं कि जिसकी प्राप्ति के लिए इंसान का सीना आज तक तरस रहा है।

शुरू-शुरू में मण्टो पर रूसी साहित्य का प्रकट प्रभाव था। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। दुनिया भर के प्रगतिशील लेखकों ने, बल्कि ऐसे लेखकों ने भी जो अपने विचार में प्रतिगामी थे, रूसी साहित्य की विरासत से लाभ उठाया है। लेकिन थोड़े समय के बाद मण्टो ने अपनी शैली बना ली जो उसकी है। अब्बास, अश्क, इस्मत और क्रिशनचन्दर के बहुत से नक्क़ाल आपको मिल जायेंगे। लेकिन मण्टो और किसी हद तक बेदी की शैली को आज तक कोई अपना न सका। उर्दू साहित्य में एक ही मण्टो और एक ही बेदी है। बाक़ी अदीबों की मिलतीजुलती तस्वीरें आप कहीं-न-कहीं ज़रूर देख सकते हैं। ख़ास तौर पर स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध पर जिस निर्भयता से मण्टो ने क़लम उठाया है हमारे साहित्य में और हिन्दी में और जहाँ तक मैंने मराठी, गुजराती और बंगाली भाषा के अनुवाद पढ़े हैं, दूसरी भाषाओं में भी उसका उदाहरण ढूँढना मुश्किल है। मण्टो ने पहले तो शर्म और लज्जा के कपड़े उतारे फिर गन्दगी की तहों को साफ़ किया फिर मूल विषय को साबुन से धो-धोकर इतना

चमकाया कि आज हम में से हर व्यक्ति स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध के महत्व, उसकी पेचीदागियों और उसके प्रभाव से अच्छी तरह परिचित नज़र आता है। इस शिक्षा से हम मण्टो के आभारी हैं। यह शिक्षा उसने अपनी जवानी और स्वास्थ्य खोकर हमें दी है। बम्बई की चालें, बम्बई की गलियाँ, बम्बई के शराबखाने, जुआघर, वेश्याओं के कोठे। मण्टो ने बम्बई की जरायम पेशा दुनिया का बड़ी बारीकी से अध्ययन किया है। सच्चाई की तलाश में वह इस कीचड़ में घुटनों-घुटनों धँस गया, उसके कपड़े ज़रूर खराब हुए लेकिन उसकी आत्मा कभी मैली नहीं हुई। उसकी कहानियों के अन्दर छुपा-छुपा दर्द उसका गवाह है। वह औरत की इज़्ज़त का, उसकी इस्मत का और उसके घरेलूपन का इतना क़ायल है कि कोई दूसरा मुश्किल से मिलेगा इसलिए जब वह औरत की इज़्ज़त को जाते हुए देखता है, उसे अपना सतीत्व छोड़ते हुए देखता है, उसके घरेलूपन को मिटते हुए देखता है—तो वह व्याकुल हो जाता है और वेचैन होकर जानना चाहता है कि ऐसा क्यों होता है? ऐसा क्यों होता है? और जब वह हर बार अपने प्रेक्षण से एक ही क्रम को, समाज के एक ही विधान को देखता है तो ग़ुस्से में आकर उसे थप्पड़ मारना चाहता है। मण्टो अपाल में विश्वास नहीं रखता। वह डराने और थप्पड़ मारने में विश्वास रखता है। उसकी हर कहानी के अन्त में एक तमाँचा होता है जो पढ़ने वाले के मुँह पर इस बुरी तरह पड़ता है कि पाठक भन्ना के रह जाता है और मण्टो को बुरा-भला कहने लगता है। लेकिन मण्टो इस तमाँचे से बाज़ नहीं आता, कभी नहीं आयेगा। जिसे बहुत से समालोचक मण्टो की यातना-प्रियता कहते हैं। वह उसकी यातना-प्रियता इतनी नहीं है बल्कि उसकी घायल इंसानियत की एक बदली हुई सूरत है। और यही चीज़ आपको मण्टो की बातचीत, उसकी कृतियों और उसके वचन और कर्म में हर जगह दिखाई देगी। मण्टो की ज़िन्दगी की बहुत सी ऐसी बातें हैं जो उसकी ज़िन्दगी में नहीं कही जा सकतीं और इसलिए लिखी भी नहीं जा सकतीं। लेकिन एक घटना मैं यहाँ लिखे बिना नहीं रह सकता। यह उन दिनों का ज़िक्र है जब मैं शालीमार पिक्चर्स पूना में नौकर था। और बम्बई में प्रगतिशील लेखक संघ की कान्फ्रैन्स में भाग

लेने आया था। अचानक मेरी मुलाक़ात मण्टो से ट्रेन में हो गई। कोई दस-पन्द्रह मिनट तक हम दोनों साथ रहे। इधर-उधर की बातों के बाद मण्टो ने यकायक मुझ से पूछा, भई मैंने एक लड़की 'शीन' साहब के पास भेजी थी। एक्ट्रेस बनने की इच्छुक थी। उसका क्या हुआ। मैंने कहा वह लड़की तो 'पे' साहब के पास है आजकल। फिर मैंने पूछा, तुमने तो उसका अध्ययन किया होगा। मण्टो ने गम्भीरता से कहा—लाहौलवला क़ूवत। मैं तो सिर्फ़ वेश्याओं का अध्ययन किया करता हूँ। मैं शरीफ़ लड़कियों के पास नहीं फटकता।

यह मण्टो का खास अन्दाज़ है। फिर उसने रुक कर कहा—मुझे तो बिचारी बड़ी शरीफ़ मालूम होती है मगर पेट बुरी बला है। फिर वह देर तक चुप रहा और मैंने अनुभव किया कि इस इंसान के अन्दर कितनी झिझक, शर्म और नफ़्स की पाकीज़गी है। वह औरत को कितना साफ़-सुथरा, पाकीज़ा और इस्मत परवर देखना चाहता है। और जब कोई ज़िन्दगी, सृष्टि और सौंदर्य को गन्दगी और अपवित्रता से अलग देखना चाहे तो उसके स्वस्थ दृष्टि-कोण में कोई शक नहीं रहता। उसकी साहित्यिक ईमानदारी पर विश्वास करना ही पड़ता है। उसकी निष्ठा पर ईमान लाना ही पड़ता है। कम-से-कम मुझे इसका पूरा विश्वास है। यह और बात है कि मण्टो मुझे झुठलाने के लिए दो एक कहानियाँ अभी मेरे दावे के विरोध में लिख दे·········वह ऐसी हरकत कर सकता है लेकिन यह प्रतिक्रिया उसके जौहर, उसकी उपज और उसकी कला के विरुद्ध दलील नही है। उसके जौहर का ग़ालिब हिस्सा इंसानी सौंदर्य, इंसानी हमदर्दी और इंसानियत को बेहतर बनाने की आरज़ू की चुग़ली करता है और यही उसके साहित्य के गहरे निशान हैं।

—१९४८

नंगी आवाज़ें

भोलू और गामा दो भाई थे। बहुत परिश्रमी। भोलू क़लईगर था। सवेरे धौंकनी सिर पर रखकर निकलता और दिन-भर शहर की गलियों में 'भाण्डे क़लई करालो' की आवाजें लगाता रहता। शाम को घर लौटता तो उसके तहमत की अंटी में तीन-चार रुपये की चिल्लर अवश्य होती।

गामा खोंचा लगाता था। उसको भी दिन भर छाबड़ी सिर पर उठाये घूमना पड़ता था। तीन-चार रुपये वह भी कमा लेता था, परन्तु उसे शराब की लत थी। शाम को दीने के भटियारखाने में खाना खाने से पहले एक पाव शराब उसे ज़रूर चाहिये थी। पीने के बाद वह खूब चहकता। दीने के भटियार-खाने में चहल-पहल हो जाती। सब को मालूम था कि वह पीता है और उसी के सहारे जीता है

भोलू ने गामा को, जो उससे दो साल बड़ा था, बहुत समझाया कि देखो, यह शराब की लत बहुत बुरी है। विवाहित हो, व्यर्थ पैसा बरबाद करते हो। यही जो तुम प्रतिदिन एक पाव शराब पर खर्च करते हो, यदि बचाकर रखो तो भाभी ठाठ से रहा करे। नंगी-बुच्ची अच्छी लगती है तुम्हें अपनी घर-वाली ? गामा ने इस कान सुना उस कान उड़ा दिया। भोलू जब थक हार गया तो उसने कहना-सुनना ही छोड़ दिया।

दोनों शरणार्थी थे। एक बड़ी बिल्डिंग के साथ सर्वण्ट क्वार्टर थे। इन पर जहाँ औरों ने क़ब्ज़ा जमा रखा था, वहाँ दोनों भाइयों ने भी एक

क्वार्टर पर जो दूसरी मंज़िल पर था, अपने रहने के लिए सुरक्षित कर लिया था।

सरदियाँ आराम से व्यतीत हो गईं। गरमी आई तो गामा को बड़ी तकलीफ़ हुई। भोलू तो ऊपर छत पर खाट बिछा कर सो जाता था। गामा क्या करता ?

बीवी थी और ऊपर परदे का कोई प्रबन्ध नहीं था। अकेले गामा ही को यह तकलीफ़ नहीं थी। क्वार्टरों में जितने भी विवाहित लोग थे सबका यही हाल था।

कल्लन को एक बात सूझी। उसने छत पर एक कोने में अपनी और अपनी पत्नी की चारपाई के चारों ओर टाट तान दिया। इस प्रकार पर्दे का प्रबन्ध होगया। कल्लन की देखा-देखी दूसरों ने भी इस तरकीब से काम लिया। भोलू ने भाई की मदद की और कुछ ही दिनों में बाँस आदि गाड़ कर, टाट और कम्बल जोड़कर परदे का प्रबन्ध कर दिया। इस प्रकार हवा तो अवश्य रुक जाती थी मगर नीचे क्वार्टर के नर्क से हर हालत में यह जगह अच्छी थी।

ऊपर छत पर सोने से भोलू के जीवन में एक विचित्र परिवर्तन होगया। वह विवाह आदि में बिल्कुल विश्वास नहीं रखता था। उसने दिल में निश्चय कर लिया था कि यह जंजाल कभी नहीं पालेगा। जब कभी गामा उसके विवाह की बात छेड़ता तो वह कहता—"ना भाई, मैं अपने स्वस्थ पिण्डे पर जोंकें नहीं लगवाना चाहता।" परन्तु जब गरमी आई और उसने ऊपर खाट बिछा कर सोना शुरू किया तो दस-पन्द्रह दिन ही में उसके विचार बदल गये। एक दिन शाम को दीने के भटियारखाने में उसने अपने भाई से कहा—"मेरी शादी करदो, नहीं तो मैं पागल हो जाऊँगा।"

गामा ने जब यह सुना तो उसने कहा—"यह क्या मज़ाक़ सूझा है तुम्हें ?"

भोलू बहुत गम्भीर हो गया—"तुम्हें नहीं मालूम। पन्द्रह रातें होगई हैं मुझे जागते हुए।"

गामा ने पूछा—"क्यों क्या हुआ ?"

"कुछ नहीं यार—दायें-बायें, जिधर नज़र डालो, कुछ-न-कुछ हो रहा होता है। अजीब-अजीब आवाज़ें आती हैं। नींद क्या आयेगी खाक।"

गामा ज़ोर से अपनी घनी मूँछों में हँसा। भोलू शरमा गया—"वह जो कल्लन है, उसने तो हद ही कर दी है। साला रात भर बकवास करता रहता है। उसकी बीबी साली की ज़बान भी तालू से नहीं लगती। बच्चे पड़े रो रहे हैं मगर वह…………।"

गामा सदैव की भाँति नशे में था। भोलू चला गया तो उसने दीने के भटियारखाने में अपने सब परिचितों को खूब चहक-चहक कर बताया कि भाई को आजकल नींद नहीं आती। उसका कारण जब उसने अपने विशेष ढंग से बयान किया तो सुनने वालों के पेट में हँस-हँस कर बल पड़ गये। जब ये लोग भोलू से मिले तो उसका खूब मज़ाक उड़ाया। कोई उससे पूछता—"हाँ भाई, कल्लन अपनी बीवी से क्या बातें करता है ?" काई कहता—"मियाँ, मुफ्त में आनन्द लेते हो, सारी रात फिल्में देखते हो। सौ फ़ीसदी गाती-बोलती।"

कुछ लोगों ने अश्लील मज़ाक़ किये। भोलू चिढ़ गया। गामा जब नशे की हालत में नहीं था तो उसने उससे कहा—"तुमने तो यार मेरा मज़ाक़ बना दिया है। देखो, जो मैंने तुम से कहा है वह झूठ नहीं है। मैं इंसान हूँ। खुदा की क़सम मुझे नींद नहीं आती। आज बीस दिन हो गये हैं मुझे जागते हुये। तुम मेरे विवाह का प्रबन्ध कर दो वरना खुदा की क़सम मेरा खाना खराब हो जायगा। भाभी के पास मेरे पाँचसौ रुपये जमा हैं। जल्दी करदो प्रबन्ध !"

गामा ने मूंछ मरोड़ कर पहले कुछ सोचा, फिर कहा—"अच्छा, हो जायगा प्रबन्ध। तुम्हारी भाभी से आज ही बात करता हूँ कि वह अपनी मिलने वालियों से पूछताछ करे।"

डेढ़ महीने के अन्दर-अन्दर बात पक्की हो गई। समद क़लईगर की लड़की आयशा, गामा की बीवी को बहुत पसन्द आई। सुन्दर थी, घर का काम-काज

जानती थी । वैसे समद भी शरीफ था । मुहल्ले वाले उसकी इज़्ज़त करते थे । भोलू परिश्रमी था, स्वस्थ था । जून के मध्य में विवाह की तारीख निश्चित होगई । समद ने बहुत कहा कि वह इतनी गरमी में लड़की नहीं ब्याहेगा मगर भोलू ने जब ज़ोर दिया तो वह मान गया ।

विवाह के चार दिन पहले भोलू ने अपनी दुल्हन के लिए ऊपर छत पर टाट के परदे का प्रबन्ध किया । बाँस बड़ी मज़बूती से छत पर गाड़े । टाट खूब कसकर लगाया । चारपाइयों पर नये खेस बिछाये । नई सुराही मुंडेर पर रखी । शीशे का गिलास बाज़ार से खरीदा । सब काम उसने बड़े क़ायदे से किये ।

रात को जब वह टाट के परदे में घिर कर सोया तो उसे विचित्र-सा लगा । वह खुली हवा में सोने का आदी था परन्तु अब उसे आदत डालनी थी । यही कारण था कि विवाह से चार दिन पहले ही उसने यों सोना शुरू कर-दिया । पहली रात जब वह लेटा और उसने अपनी पत्नी के बारे में सोचा तो वह पसीने में तर-बतर हो गया । उसके कानों में वह आवाज़ें गूंजने लगीं जो उसे सोने नहीं देती थीं और उसके मस्तिष्क में भाँति-भाँति के व्याकुल कर देने वाले विचार उत्पन्न कर देती थीं ।

क्या वह भी ऐसी ही आवाज़ें निकालेगा ? क्या आसपास के लोग ये आवाज़ें सुनेंगे ? क्या वह भी उसी की तरह जाग जागकर रातें काटेंगे ? किसी ने यदि झाँक कर देख लिया तो क्या होगा ?

भोलू पहले से भी अधिक व्याकुल हो गया । हर वक़्त उसको यही बात सताती रहती कि टाट का परदा भी कोई परदा है । फिर चारों ओर लोग बिखरे पड़े हैं । रात की स्तब्धता में हल्की-सी कानाफूसी भी दूसरे कानों तक पहुँच जाती है । लोग कैसे यह नंगा जीवन व्यतीत करते हैं । एक छत है । इस चारपाई पर पत्नी लेटी है, उस चारपाई पर पति पड़ा है । सैकड़ों आंखें, सैकड़ों कान आस-पास खुले हुए हैं । नज़र न आने पर भी आदमी सब कुछ देख लेता है । हल्की-सी आहट पूरा चित्र बनकर सामने आजाती है ।

यह टाट का परदा क्या है। सूरज निकलता है तो उसका प्रकाश सारी चीजों को बेपरदे कर देता है। वह सामने कल्लन अपनी पत्नी की छातियाँ दबा रहा है। उस कोने में उसका भाई गामा लेटा है। उसका तहमद खुलकर एक तरफ पड़ा है। उधर ईदू हलवाई की कुंवारी बेटी शादां का पेट छिदरे टाट से झांक कर देख रहा है।

शादी का दिन आया तो भोलू का जी चाहा कि वह कहीं भाग जाय। मगर कहाँ जाता। अब तो वह जकड़ा जा चुका था। ग़ायब हो जाता तो समद जरूर आत्म हत्या कर लेता। उसकी लड़की पर न जाने क्या बीतती। जो तूफ़ान मचता वह अलग।

"अच्छा जो होता है होने दो। मेरे साथी और भी तो हैं। धीरे-धीरे आदत हो जायगी मुझे भी।" भोलू ने खुद को ढारस दी और नई-नवेली दुल्हन की डोली घर ले आया।

क्वार्टरों में चहल-पहल हो गई। लोगों ने भोलू और गामा को खूब बधाइयाँ दीं। भोलू के जो ख़ास दोस्त थे, उन्होंने उसको छेड़ा और पहली रात के लिए कई कामयाब गुर बताये। भोलू ख़ामोशी से सुनता रहा। उसकी भाभी ने ऊपर कोठे पर टाट के परदों के पीछे बिस्तर का प्रबन्ध कर दिया। गामा ने चार मोतियों के बड़े-बड़े हार तकिये के पास रख दिये। एक दोस्त उसके लिए जलेबियों वाला दूध ले आया।

देर तक वह नीचे क्वार्टर में अपनी दुल्हन के पास बैठा रहा। वह बेचारी शरम की मारी, सर झुकाये, घूंघट काढे सिमटी हुई थी। सख्त गरमी थी। भोलू का नया कुर्ता उसके शरीर से चिपका हुआ था। पंखा झल रहा था मगर हवा जैसे बिल्कुल ग़ायब ही हो गई थी। भोलू ने पहले सोचा था कि वह ऊपर कोठे पर नहीं जायगा। नीचे क्वार्टर में ही रात काट देगा। मगर जब गरमी हद से बढ़ गई तो वह उठा और दुल्हन से चलने को कहा।

रात आधी से ज़्यादा गुज़र चुकी थी। सब क्वार्टरों पर स्तब्धता छाई हुई थी। भोलू को इस बात का निश्चय था कि सब सो रहे होंगे। कोई उसको

नहीं देखेगा। चुपचाप दबे क़दमों से वह अपने टाट के परदे के पीछे अपनी दुल्हन सहित दाखिल हो जायगा और सुबह मुँह अंधेरे नीचे उतर जायेगा।

जब वह कोठे पर पहुँचा तो वहाँ बिल्कुल ख़ामोशी थी। दुल्हन ने शर्माये हुये क़दम उठाये तो पाज़ेब के चांदी के घुंघरू बजने लगे। भोलू ने एकदम अनुभव किया कि चारों तरफ़ जो नींद बिखरी हुई थी, चौंक कर जाग पड़ी है। चारपाइयों पर लोग करवटें बदलने लगे। खांसने-खंखारने की आवाज़ें इधर-उधर उभरीं। दबी-दबी कानाफूसी इस तपी हुई फ़िज़ा में तैरने लगी। भोलू ने घबराकर अपनी पत्नी का हाथ पकड़ा और जल्दी से टाट की ओट में चला गया। दबी-दबी हँसी की आवाज़ उसके कानों से टकराई। उसकी घबराहट और बढ़ गई। पत्नी से बात की तो पास ही खुसर-पुसर शुरू हो गई। दूर कोने में जहाँ कल्लन की जगह थी, वहां चारपाई की चरचूं-चरचूं होने लगी। यह धीमी पड़ी तो गामा की लोहे की चारपाई बोलने लगी। ईदू हलवाई की कुंवारी लड़की शादां ने दो-तीन बार उठकर पानी पिया। घड़े के साथ उसका गिलास टकराता तो एक छनाका-सा पैदा होता। खैरे क़साई के लड़के की चारपाई से बार-बार माचिस जलाने की आवाज़ आती थी।

भोलू अपनी दुल्हन से कोई बात न कर सका। उसे डर था कि आस-पास के खुले हुये कान फ़ौरन उसकी बात निगल जायेंगे और सारी चारपाइयाँ चरचूं-चरचूं करने लगेंगी। दम साधे वह ख़ामोश लेटा रहा। कभी-कभी सहमी हुई दृष्टि से अपनी पत्नी की तरफ़ देख लेता, जो गठड़ी सी बनी दूसरी चारपाई पर लेटी थी। कुछ देर जागती रही, फिर सो गई।

भोलू ने चाहा कि वह भी सो जाय। मगर उसको नींद न आई। थोड़ी-थोड़ी देर के बाद उसके कानों में आवाज़ें आती थीं—आवाज़ें जो फ़ौरन तस्वीर बनकर उसकी आँखों के सामने से गुज़र जाती थीं।

उसके दिल में बड़े वलवले थे। बड़ा जोश था। जब उसने शादी का इरादा किया था तो सब प्रकार के आनन्द जिनसे वह अपरिचित था, उसके दिल और दिमाग़ में चक्कर लगाते रहते थे। उनकी गर्मी अनुभव होती थी। बड़ी

सन्तोषदायक गर्मी । मगर अब जैसे पहली रात से कोई दिचलस्पी ही नहीं थी। उसने रात में कई बार यह दिलचस्पी पैदा करने की कोशिश की, मगर आवाज़ें—वह तस्वीरें खींचने वाली आवाज़ें, सब कुछ नष्ट-भ्रष्ट कर देतीं। वह स्वयं को नंगा अनुभव करने लगता—बिल्कुल नंगा, जिसको लोग चारों तरफ़ से आँखें फाड़-फाड़कर देख रहे हैं और हँस रहे हैं।

सवेरे चार बजे के लगभग वह उठा। बाहर निकलकर उसने ठण्डे पानी का एक गिलास पिया। कुछ सोचा। वह संकोच जो उसके दिल में बैठ गया था, उसे दूर किया। अब ठण्डी हवा चल रही थी जो काफ़ी तेज़ थी। भोलू की निगाहें कोने की तरफ़ मुड़ीं। कल्लन का घिसा हुआ टाट हिल रहा था। वह अपनी पत्नी के साथ बिल्कुल नंग-धड़ंग लेटा था। भोलू को बड़ी घृणा हुई। साथ ही क्रोध भी आया कि हवा ऐसे कोठों पर क्यों चलती है। चलती है तो टाटों को क्यों छेड़ती है। उसके जी में आया कि कोठे पर जितने टाट हैं सब नोच डाले और नंगा होकर नाचने लगे।

भोलू नीचे उतर गया। जब काम पर निकला तो कई दोस्त मिले। सबने उससे पहली रात की बातें पूछीं। फोजे दरज़ी ने उसको दूर ही से आवाज़ दी—"क्यों, उस्ताद भोलू, कैसे रहे? कहीं हमारे नाम पर बट्टा तो नहीं लगा दिया तुमने?"

छागे टीनसाज़ ने उससे बड़े राजदाराना स्वर में कहा—"देखो, अगर कोई गड़बड़ हो तो बता दो एक बड़ा अच्छा नुस्ख़ा मेरे पास है।"

बाले ने उसके कंधे पर ज़ोर से धप्पा मारा—"क्यों पहलवान, कैसा रहा दंगल?"

भोलू ख़ामोश रहा।

सुबह उसकी पत्नी मैके चली गई। पांच-छ: दिन के बाद वापस आई तो भोलू को फिर उसी कठिनाई का सामना करना पड़ा। कोठे पर सोने वाले जैसे उसकी पत्नी की प्रतीक्षा कर रहे थे। कुछ रातें ख़ामोशी रही थीं। लेकिन जब वह ऊपर सोये तो फिर वही खुसपुस, वही चरचूं-चरचूं, वही खाँसना खँखारना, वही घड़े के साथ गिलास के टकराने के छनाके, करवटों पर करवटें,

दबी-दबी हँसी। भोलू सारी रात अपनी चारपाई पर लेटा आकाश की तरफ़ देखता रहा। कभी-कभी एक ठण्डी आह भर कर अपनी पत्नी को देख लेता और दिल से कहता—"मुझे क्या हो गया है—यह मुझे क्या हो गया है—यह मुझे क्या होगया है ?"

सात रातों तक यही होता रहा। आखिर तंग आकर भोलू ने अपनी पत्नी को मैके भेज दिया। बीस-पच्चीस दिन गुज़र गये तो गामा ने भोलू से कहा—"यार तुम बड़े विचित्र आदमी हो। नई-नई शादी और बीवी को मैके भेज दिया। इतने दिन हो गये हैं उसे गये हुये। तुम अकेले सोते कैसे हो ?"

भोलू ने केवल इतना कहा—"ठीक है।"

गामा ने पूछा—"ठीक है, जो बात है बताओ। क्या तुम्हें पसन्द नहीं आई आयशा ?"

"यह बात नहीं है।"

"यह बात नहीं है तो और क्या बात है ?"

भोलू बात गोल कर गया। मगर थोड़े ही दिनों के बाद उसके भाई ने फिर बात छेड़ी। भोलू उठकर क्वार्टर के बाहर चला गया। बाहर चारपाई पड़ी थी उस पर बैठ गया। अन्दर से उसको अपनी भाभी की आवाज़ सुनाई दी। वह गामा से कह रही थी—"तुम जो कहते हो ना कि भोलू को आयशा पसन्द नहीं आई, यह ग़लत है।"

गामा की आवाज़ आई—"तो और क्या बात हैं ? भोलू को उससे कोई दिलचस्पी ही नहीं।"

"दिलचस्पी क्या हो !"

"क्यों—?"

गामा की बीवी का जवाब भोलू न सुन सका। मगर उसके बावजूद उसको ऐसा अनुभव हुआ कि उसकी सारी हस्ती किसी ने हावन में डालकर कूट दी है। एक दम गामा ऊँची आवाज़ में बोला—"नहीं, नहीं—यह तुमसे किसने कहा ?"

गामा की बीवी बोली—"आयशा ने अपनी किसी सहेली से ज़िकर किया। बात उड़ती-उड़ती मुझ तक पहुँच गई।

बड़े दुखी स्वर में गामा ने कहा—"यह तो बहुत बुरा हुआ।"

भोलू के दिल में छुरी-सी उतर गई। उसका दिमाग़ी तवाज़ुन बिगड़ गया। उठा और कोठे पर चढ़ कर, जितने टाट लगे थे, उखाड़ने शुरू कर दिये खट-खट फट्-फ़ट सुनकर लोग जमा हो गये। उन्होंने उसको रोकने की कोशिश की तो वह लड़ने लगा। बात बढ़ गई। कल्लन ने बाँस उठाकर उसके सर पर दे मारा। भोलू चकराकर गिरा और बेहोश होगया। जब होश आया तो उसका दिमाग़ चल चुकाथा।

अब वह बिल्कुल नंगा बाजारों में घूमता फिरता है। कहीं टाट लटकता दिखाई देता है तो उसको उतार कर टुकड़े-टुकड़े कर देता है।

———

लतिका रानी

वह सुन्दर नहीं थी। कोई ऐसी चीज़ उसकी शक्ल और सूरत में नहीं थी, जिसे आकर्षक कहा जा सके। लेकिन इसके बावजूद जब वह पहली बार फ़िल्म के परदे पर आई तो उसने लोगों के दिल मोह लिये। और ये लोग जो उसे फ़िल्म के परदे ही पर नन्हीं-मुन्नी अदाओं के साथ बड़े नर्म व नाज़ुक रूमानों में छोटी-सी तितली की भाँति उधर से इधर और इधर से उधर थिरकते देखते थे, समझते थे कि वह बहुत सुन्दर है। उसके चेहरे मोहरे और उसके नाज़ नखरे में उनको ऐसा आकर्षण दिखाई देता था कि वह घण्टों उसके प्रकाश में मब्हूत मक्खियों की तरह भनभनाते रहते थे।

यदि किसी से पूछा जाता कि तुम्हें लतिका रानी के सौन्दर्य में कौन सी सब से बड़ी विशेषता दिखाई देती है जो इसे दूसरी अभिनेत्रियों से भिन्न हैसियत बख़्शती है तो वह निस्संकोच यह कहता कि उसका भोलापन। और यह वास्तविकता है कि परदे पर वह बड़ी भोली दिखाई देती है। उसको देखकर इसके अलावा कोई और विचार दिमाग़ में आ ही नहीं सकता कि वह भोली है। बहुत ही भोली। और जिन रूमानों की भूमिका में वह पेश होती थी उनके ताने-बाने यूँ मालूम होता था, किसी जुलाहे की अल्हड़ लड़की ने तैयार किये हैं।

वह जब भी परदे पर पेश हुई, एक साधारण अनपढ़ व्यक्ति की बेटी के रूप में। चमकीली दुनिया से दूर एक टूटा-फूटा झोंपड़ा ही जिसकी सारी दुनिया

थी। किसी किसान की बेटी, किसी मज़दूर की बेटी, किसी काँटा बदलने वाले की बेटी। और वह इन पात्रों के खोल में यूँ समा जाती थी, जैसे गिलास में पानी।

लतिका रानी का नाम आते ही आँखों के सामने, टखनों से बहुत ऊँचा घघरा पहिने, खींचकर ऊपर की हुई नन्हीं-मुन्नी चोटी वाली, छोटी क़द की एक छोटी सी लड़की आजाती थी जो मिट्टी के छोटे-छोटे घरौन्दें बनाने या बकरी के मासूम बच्चे के साथ खेलने में व्यस्त है। नंगे पांव, नंगे सर, फँसी-फँसी चोली में बड़ी शाइराना दीनता के साथ सीने का छोटा-सा उभार, मध्यम आँखें, शरीफ़-सी नाक। उसके आकार-प्रकार में यों समझिये कौमार्य का खुलासा होगया था जो हर देखनेवाले की समझ में आजाता था।

पहले फ़िल्म में आते ही वह प्रसिद्ध हो गई। और उसकी यह प्रसिद्धि अभी तक क़ायम है, यद्यपि उसे फिल्मी दुनिया छोड़े एक मुद्दत हो चुकी है। अपने फ़िल्मी जीवन के दौरान में उसने प्रसिद्धि के साथ धन भी कमाया। अपने नपे-तुले ढंग से मानो उसको अपनी जेब में आने वाली हर पाई की आमदनी का इल्म था और प्रसिद्धि की सब सीढ़ियां भी उसने इसी अन्दाज़ में तय कीं कि हर आने वाली सीढ़ी की तरफ़ उसका क़दम बड़े विश्वास से उठता था।

लतिका रानी बहुत बड़ी अभित्री और विचित्र औरत थी। इक्कीस वर्ष की आयु में जब वह फ्रांस में शिक्षा प्राप्त कर रही थी तो उसने फ्रांसीसी भाषा के बजाय हिन्दुस्तानी भाषा सीखनी शुरू कर दी। स्कूल में एक मद्रासी नवयुवक को उससे प्रेम होगया था। उससे विवाह करने का वह पूरा-पूरा फ़ैसला कर चुकी थी। लेकिन जब लन्दन गई तो उसका परिचय एक अधेड़ उम्र के बंगाली से हुआ, जो वहाँ बैरिस्ट्री पास करने की कोशिश कर रहा था। लतिका ने अपना इरादा बदल दिया और मन में निश्चय कर लिया कि वह इससे शादी करेगी। और यह निश्चय उसने बहुत सोच-विचार के बाद किया था। उसने बैरिस्ट्री पास करने वाले अधेड़ उम्र के बंगाली में वह व्यक्ति देखा जो उसके सपनों को पूरा करने में भाग ले सकता था। वह मद्रासी जिससे उसको प्रेम था, जर्मनी में फेफड़ों की बीमारियों और उनके इलाज में निपुणता प्राप्त कर रहा

था। उससे विवाह करके अधिक-से-अधिक उसे अपने फेफड़ों की अच्छी देख-भाल की ज़मानत मिल सकती थी, जिसकी उसे आवश्यकता नहीं थी। लेकिन प्रफुल्ल राय एक स्वप्ननिर्माता था। ऐसा स्वप्ननिर्माता जो स्थायी स्वप्न बुन सकता था और लतिका उसके आस-पास अपने नारीत्व के बड़े मज़बूत जाले तन सकती थी।

प्रफुल्ल राय एक मध्यम घराने का व्यक्ति था, बहुत परिश्रमी। वह चाहता तो क़ानून की बड़ी-से-बड़ी डिग्री सब विद्यार्थियों से आगे रह कर प्राप्त कर सकता था। मगर उसे इस विद्या से बड़ी घृणा थी। केवल अपने माँ-बाप को प्रसन्न रखने के लिए वह डिनर्ज़ में हाजरी देता था और थोड़ी देर किताबों का अध्ययन भी कर लेता था। वरना उसका दिल और दिमाग़ किसी और तरफ़ ही लगा रहता था। किस तरफ़? यह उसको मालूम नहीं था। दिन-रात वह खोया-खोया सा रहता। उसे जमघटों से घृणा थी। पार्टियों से कोई दिलचस्पी नहीं थी। उसका सारा समय लगभग एकान्त में गुज़रता। किसी चाय-घर में या अपनी बूढ़ी लैण्डलेडी के पास बैठा वह घण्टों ऐसे क़िले बनाता रहता जिनकी नींव होती थी न दीवारें। मगर उसको विश्वास था कि एक-न-एक दिन उससे कोई-न-कोई इमारत अवश्य बन जायेगी जिसको देखकर वह खुश हुआ करेगा।

लतिका जब प्रफुल्ल राय से मिली तो कुछ ही मुलाक़ातों में उसको मालूम हो गया कि यह बैरिस्ट्री करने वाला बंगाली साधारण व्यक्ति नहीं है। दूसरे पुरुष उससे दिलचस्पी लेते रहे थे, इसलिए कि वह जवान थी। उनमें से अधिकांश ने उसके सौंदर्य की प्रशंसा की थी लेकिन बहुत दिन हुए वह उसका फैसला अपने विरुद्ध कर चुकी थी। उसको मालूम था कि उनको प्रशंसा केवल दिखावे की है। मद्रासी डाक्टर जो उससे वास्तव में प्रेम करता था, उसको सही अर्थ में सुन्दर समझता था। मगर लतिका समझती थी कि वह उसकी नहीं, उसके फेफड़ों की प्रशंसा कर रहा है। जो उसके कहने के अनुसार बेदाग़ थे। वह एक साधारण शक्ल व सूरत की लड़की थी। बहुत ही साधारण शक्ल-सूरत की जिसमें न मोहकता थी न आकर्षण। उसने कई बार अनुभव किया कि वह अधूरी-सी है। उसमें बहुत-सी कमियाँ हैं जो पूरी तो हो सकती हैं मगर

बड़ी छानबीन के बाद और वह भी उस समय जब उसको बाहरी सहायता प्राप्त हो।

प्रफुल्लराय से मिलने के बाद लतिका ने अनुभव किया था कि वह जो हर वक्त सिगरेट फूँकता रहता है, और जिसका दिमाग़ ऐसा लगता है, हमेशा ग़ायब रहता है, वास्तव में सिगरेटों के परेशान धुयें में, अपने दिमाग़ की ग़ैर-हाज़िरी के बावजूद उसकी शक्लोसूरत के सब अंगों को बिखेर कर उनको अपने ढंग से सँवारने में व्यस्त रहता है। वह उसके बातचीत करने के ढंग, उसके होंठों की जुम्बिश और उसकी आँखों की हरकत को सिर्फ अपनी ही नहीं दूसरों की आँखों से भी देखता है। फिर उनको उलट-पलट करता है और अपनी कल्पना, बात करने का नया ढंग, होंठों की नई जुम्बिश और आँखों की नई हरकत पैदा करता है। एक मामूली-से परिवर्तन पर वह बड़े महत्वपूर्ण नतीजों की बुनियादें खड़ी करता है और मन-ही-मन में खुश होता है।

लतिका बुद्धिमती थी। उसको फ़ौरन ही मालूम हो गया था कि प्रफुल्लराय ऐसा निर्माता है जो उसे इमारत का नक्शा बनाकर नहीं दिखायेगा। वह उससे यह भी नहीं कहेगा कि कौनसी ईंट उखेड़ कर कहाँ लगाई जायगी तो इमारत का दोष दूर होगा। चुनाँचे उसने उसके विचारों और चिन्तन ही से सब हिदायतें वसूल करना शुरू कर दी थीं।

प्रफुल्ल राय ने भी फ़ौरन ही अनुभव कर लिया कि लतिका उसके विचारों का अध्ययन करती है—और उन पर अमल करती है। वह बहुत खुश हुआ और इस मूक आदान-प्रदान का सिलसिला देर तक चलता रहा।

प्रफुल्ल राय और लतिका दोनों सन्तुष्ट थे। इसलिए कि वे दोनों एक-दूसरे के पूरक हो गये थे। एक के बिना दूसरा अपूर्ण था। लतिका को ख़ास तौर पर अपनी मानसिक और शारीरिक करवट में प्रफुल्ल की मूक आलोचना का सहारा लेना पड़ता था। वह उसकी नाज़ो-अदा की कसौटी था। उसकी प्रकट रूप से शून्य में देखने वाली दृष्टि से उसे पता चल जाता था कि उसकी पलक की कौन-सी नोक टेढ़ी है। लेकिन वह अब यह वास्तविकता मालूम कर चुकी थी कि वह गर्मी जो उसकी शून्य में देखने वाली आँखों में है,—उसके आलि-

गन में नहीं थी। लतिका के लिए वह बिल्कुल ऐसा ही था—जैसे खुरीं चारपाई। लेकिन वह सन्तुष्ट थी। इसलिये कि उसके स्वप्नों के बाल और पर निकालने के लिए प्रफुल्ल की आँखों की गर्मी ही काफ़ी थी।

वह बड़ी गणितज्ञ और अनुमान लगा लेने वाली औरत थी। उसने दो महीने के अन्दर ही हिसाब लगा लिया था कि, एक वर्ष के अन्दर-अन्दर उसके स्वप्नों को पूरा करने का काम शुरू हो जायगा। क्योंकर होगा और किस वातावरण में होगा यह सोचना प्रफुल्ल राय का काम था। और लतिका को विश्वास था कि उसका हमेशा घूमने वाला दिमाग़ कोई-न-कोई रास्ता निकाल ही लेगा। अतएव दोनों जब हिन्दुस्तान वापस जाने के इरादे से बर्लिन की सैर को गये और प्रफुल्ल का एक दोस्त उन्हें ऊफ़ा फ़िल्म स्टूडियोज़ में ले गया तो लतिका ने प्रफुल्ल की शून्य में देखने वाली आँखों की गहराइयों में अपने भविष्य की झलक देखली। वह एक प्रसिद्ध जर्मन अभिनेत्री से बातचीत करने में संलग्न था, मगर लतिका अनुभव कर रही थी कि वह उसके नखशिख को कैनवास का टुकड़ा बनाकर अभिनेत्री लतिका की आकृति बना रहा है।

बम्बई पहुँचे तो ताजमहल होटल में प्रफुल्लराय की मुलाक़ात एक अंग्रेज नाइट से हुई जो लगभग निर्धन था। मगर उसके परिचितों की संख्या बहुत अधिक थी। उम्र साठ से कुछ ऊपर, जुबान में लुक्नत। स्वभाव से बड़ा सज्जन। प्रफुल्लराय उसके बारे में कोई राय क़ायम न कर सका। मगर लतिका रानी की भाँप लेने वाली तबीअत ने फ़ौरन अनुमान लगा लिया कि उससे बड़े काम लिये जा सकते हैं। अतएव वह नर्स की-सी तवज्जो और निष्ठा के साथ उससे मिलने-जुलने लगी। और जैसा कि लतिका को मालूम था एक दिन डिनर पर एक तरह खुदबखुद तय हो गया कि उस फ़िल्म कम्पनी में, जो प्रफुल्ल राय स्थापित करेगा, वह दो मेहमान जो सर हावर्ड पास्कल ने निमंत्रित किये थे डायरेक्टर होंगे। और कुछ दिन के अन्दर-अन्दर वह सब बातें तय हो गईं जो एक लिमिटेड कम्पनी की बुनियादें खड़ी करने में सामने आती हैं।

सर हावर्ड बहुत काम का व्यक्ति सिद्ध हुआ। यह प्रफुल्ल की प्रतिक्रिया थी, लेकिन लतिका शुरू से ही जानती थी कि वह ऐसा व्यक्ति है जिसकी

कार्य कुशलता बहुत जल्द प्रकट हो जायगी। वह जब उसकी सेवा में कुछ समय लगाती तो प्रफुल्ल जलन अनुभव करता। मगर लतिका ने उस तरफ कभी ध्यान ही नहीं दिया था। इसमें कोई शक नहीं कि उसके साथ रहने में बुड्ढा सर हावर्ड एक प्रकार का आनन्द और सन्तोष अनुभव करता था। मगर वह इसमें कोई बुरी बात नहीं समझती थी। यों तो वह दोनों डायरेक्टर भी वास्तव में इसी कारण अपनी पूँजी लगाने के लिए तैयार हुए थे। और लतिका को इस पर भी कोई आपत्ति नहीं थी। उसके लिए ये लोग केवल उसी समय तक महत्व रखते थे जब तक उनकी पूँजी उनकी तिजोरियों में थी। वह उन दिनों की कल्पना बड़ी आसानी से कर सकती थी जब ये मारवाड़ी सेठ स्टूडियों में उसकी हल्की-सी झलक देखने के लिए तरसा करेंगे। लेकिन ये दिन निकट लाने के लिए उसे कोई जल्दी नहीं थी। हर चीज़ उसके हिसाब से अपने समय पर ठीक हो रही थी।

लिमिटेड कम्पनी स्थापित हो गई। उसके सारे शेयर भी बिक गये। सर हावर्ड पास्कल के विस्तृत सम्बन्ध और प्रभाव से एक सुहाने स्थान पर स्टूडियो के लिए ज़मीन का टुकड़ा भी मिल गया। इधर से निपटे तो डायरेक्टरों ने प्रफुल्लराय से प्रार्थना की कि वह इंग्लैण्ड जाकर ज़रूरी साज़ो सामान खरीद लाये।

इंग्लैण्ड जाने से एक दिन पूर्व प्रफुल्ल राय ने ठेठ यूरोपियन ढंग से लतिका से शादी की प्रार्थना की, जो उसने फौरन स्वीकार करली। अतएव उसी दिन उन दोनों की शादी हो गई।

दोनों इंग्लैण्ड गये। हनीमून में दोनों के लिए कोई नई बात नहीं थी। एक दूसरे के शरीर के बारे में जो बातें मालूम होनी थीं वह बहुत दिन पहले हो चुकी थीं। उनको अब धुन केवल इस बात की थी कि वह कम्पनी जो उन्होंने स्थापित की है उसके लिए मशीनरी खरीदें और वापस बम्बई जाकर काम पर गल जायँ।

लतिका ने कभी इस बारे में न सोचा था कि प्रफुल्ल जो फ़िल्म-निर्माण-कला से अपरिचित है, स्टूडियो कैसे चलायेगा। उसको उसकी तीव्र बुद्धि का

ज्ञान था। जिस तरह उसने खामोशी-ही-खामोशी में केवल अपनी शून्य में देखने वाली आँखों से उसकी नोक-पलक दुरुस्त करदी थी, उसी तरह उसको विश्वास था कि वह फ़िल्म निर्माण में भी सफल होगा। वह उसको जब अपने पहले फ़िल्म में हीरोइन बनाकर पेश करेगा तो हिन्दुस्तान में एक प्रलय आ जायगा।

प्रफुल्ल राय निर्माण-कला से बिल्कुल अनभिज्ञ था। जर्मनी में केवल कुछ दिन उसने ऊफ़ा स्टूडियोज़ में इस उद्योग का सरसरी अध्यन किया था। लेकिन जब वह इंग्लैण्ड से अपने साथ एक कैमरामैन और एक डायरेक्टर लेकर आया और इण्डिया टाकीज़ लिमिटेड का पहला फ़िल्म सेट पर गया तो स्टूडियो के सारे स्टाफ़ पर उसकी बुद्धिमत्ता और योग्यता की धाक बैठ गई। बहुत कम बातचीत करता था। सुबह सवेरे स्टूडियो आता था और सारा दिन अपने दफ़्तर में फ़िल्म के दृश्य और संवाद तैयार करने में व्यस्त रहता था। शूटिंग का एक प्रोग्राम तय हो चुका था जिसके अनुसार काम होता था। हर विभाग का एक निरीक्षक मुकर्रर था जो प्रफुल्ल की आज्ञानुसार चलता था। स्टूडियो में हर प्रकार की आवारगी वर्जित थी। बहुत साफ़-सुथरा वातावरण था जिसमें हर काम बड़े क़रीने से होता था।

पहला फ़िल्म तैयार होकर मार्किट में आगया। प्रफुल्ल राय की शून्य में देखने वाली आँखों ने जो कुछ देखना चाहा वही परदे पर पेश हुआ। वह ज़माना भड़कीलेपन का था। हीरोइन वही समझी जाती थी जो ज़र्क़-बर्क़ कपड़े पहिने हुए हो। ऊँची सोसायटी से सम्बन्धित हो। ऐसे रूमानों में संलग्न हो, वास्तविकता से जिनका दूर का भी सम्बन्ध न हो। ऐसी भाषा बोले जो स्टेज के ड्रामों में बोली जाती है। लेकिन प्रफुल्ल राय के पहिले फिल्म में सब कुछ इसके विरूद्ध था। दर्शकों के लिए यह परिवर्तन, यह अचानक इंक़िलाब बड़ा आनन्ददायक था। अतएव यह फिल्म हिन्दुस्तान में हर जगह सफल हुआ और लतिका रानी ने अवाम के दिल में फौरन ही अपनी जगह बनाली।

प्रफुल्ल राय इस सफलता पर बहुत सन्तुष्ट था। वह जब लतिका के अबोध सौन्दर्य और उसके भोले-भाले अभिनय के बारे में अखबारों में पढ़ता था

तो उसको इस ख्याल से कि वह उनका निर्माता है बहुत सन्तोष मिलता था। लेकिन लतिका पर इस सफलता ने कोई प्राभव नहीं किया था। उसके अनुमान लगाने वाले स्वभाव के लिए यह कोई अनपेक्षित चीज़ नहीं थी। वे सफलतायें जो भविष्य की कोख में छुपी हुई थीं, खुली हुई किताब के पृष्ठ की तरह उसके सामने थीं।

पहले फिल्म के उद्‌घाटन पर वह कैसे कपड़े पहिनकर सिनेमा हाल में जायगी ! अपने पति प्रफुल्ल राय से दूसरों के सामने किस प्रकार की बातचीत करेगी। जब उसे हार पहिनाये जायँगे तो वह उन्हें उतार कर खुश करने के लिए किसके गले में डालेगी। उसके होंठों का कोना-कोना किस वक्त पर किस ढंग से मुस्करायेगा। यह सब उसने एक महीना पहले सोच लिया था।

स्टूडियों में लतिका की हर हरकत, हर अदा एक ख़ास प्लान के अनुसार होती थी। उसका मकान पास ही था। सर हावर्ड पास्कल को प्रफुल्ल राय ने स्टूडियो के ऊपरी भाग में जगह देरखी थी। लतिका सुबह सवेरे आती और कुछ समय सर हावर्ड के साथ ग़ुज़ारती, जिसको बाग़बानी का शौक़ था। आधा घण्टे तक वह इस बुड्ढे अल्कन नाइट के साथ फूलों के बारे में बातचीत करती रहती। उसके बाद घर चली जाती और अपने पति से उसकी आवश्यकता-नुसार थोड़ा-सा प्यार करती। वह स्टूडियो चला जाता और लतिका अपने सादे मेकअप में जिसकी एक-एक रेखा, एक-एक बिन्दु प्रफुल्ल का बनाया हुआ था, व्यस्त हो जाती।

दूसरा फ़िल्म तैयार हुआ, फिर तीसरा। इसी तरह पाँचवाँ। ये सब काम-याब हुए। इतने कामयाब कि दूसरे फ़िल्म निर्माताओं को मजबूर होकर इण्डिया टाकीज़ लिमिटेड की स्थापित की हुई रेखाओं पर चलना पड़ा। इस नक़ल में वे सफ़ल हुए या असफल, इससे हमें कोई मतलब नहीं। लतिका की प्रसिद्धि हर नये फ़िल्म के साथ आगे ही बढ़ती गई। हर जगह इण्डिया टाकीज़ लिमिटेड का नाम था, मगर प्रफुल्ल राय को बहुत कम लोग जानते थे। वह जो उसका निर्माता था। वह जो लतिका का पति था। लेकिन प्रफुल्ल ने कभी इसके बारे में सोचा

ही नहीं था। उसकी शून्य में झाँकने वाली आँखें हर वक्त सिगरेट के धुयें में लतिका के नित नये रूप बनाने में व्यस्त रहती थीं।

इन फिल्मों में हीरो का कोई महत्व नहीं था। प्रफुल्ल राय के इशारों पर वह कहानी में उठता-बैठता और चलता था। स्टूडियों में भी उसका व्यक्तित्व साधारण था। सब जानते थे कि पहिला नम्बर मिस्टर राय का और दूसरा मिसेज़ राय का। जो बाक़ी हैं सब व्यर्थ हैं। लेकिन इसकी प्रतिक्रिया यह शुरू हुई कि हीरो ने पर-पुर्ज़े निकालने शुरू कर दिये। लतिका के साथ उसका नाम पर्दे पर अनिवार्य हो गया था, इसलिए इससे उसने फ़ायदा उठाना चाहा। लतिका से उसे हार्दिक घृणा थी। इसलिए कि वह उसके अधिकारों की परवा ही नहीं करती थी। उसका चर्चा भी उसने धीरे-धीरे स्टूडियो में करना शुरू कर दिया था जिसका नतीजा यह हुआ कि अचानक प्रफुल्ल राय ने अपने आगामी फ़िल्म में उसे न लिया। इस पर छोटा-सा हंगामा हुआ ले कन फ़ौरन ही दब गया। नये हीरो के आने से थोड़ी देर स्टूडियो में काना-फूसी होती रही, लेकिन यह भी धीरे-धीरे ख़त्म हो गई।

लतिका अपने पति के इस फ़ैसले से सहमत नहीं थी। लेकिन उसने उसे बदलवाने का प्रयत्न नहीं किया। जो हिसाब उसने लगाया था उसके अनुसार ताज़ा फिल्म असफल सिद्ध हुआ। उसके बाद दूसरा भी। और जैसा कि लतिका को मालूम था, उसकी प्रसिद्धि कम होने लगी। और एक दिन सुनने में आया कि वह नये हीरो के साथ भाग गई। अख़बारों में एक तहलका मच गया। लतिका आश्चर्यजनक रूप से रोमान्स आदि से दूर रही थी। लोगों ने जब सुना कि वह नये हीरो के साथ भाग गई है, तो उसके इश्क़ की कहानियाँ गढ़नी शुरू कर दीं।

प्रफुल्ल राय को बहुत दुख हुआ। जो उसके पास थे उनका बयान है कि वह कई बार बेहोश हुआ। लतिका का भाग जाना उसके जीवन का बहुत बड़ा दुख था। उसका वजूद उसके लिए कैनवास का एक टुकड़ा था, जिस-पर वह अपने स्वप्नों के चित्र बनाया करता था। अब ऐसा टुकड़ा उसे और कहीं से प्राप्त न हो सकता था। ग़म के मारे वह निढाल हो गया। उसने कई बार

चाहा कि स्टूडियो को आग लगा दे और उसमें ख़ुद को झोंक दे। मगर इसके लिए बड़ी हिम्मत की ज़रूरत थी, जो उसमें नहीं थी।

अन्त में पुराना हीरो आगे बढ़ा और उसने मामला सुलझाने के लिए अपनी सेवायें पेश कीं। उसने लतिका के बारे में ऐसी-ऐसी बातें बताईं कि प्रफुल्ल भौंचक्का रह गया। उसने बताया—"लतिका एक ऐसी औरत है जो प्रेम की कोमल भावना से वंचित है। नये हीरो के साथ वह इसलिए नहीं भागी कि उसको उससे प्रेम है। यह केवल स्टण्ट है। यह एक ऐसी चाल है जिससे वह अपनी गिरती हुई प्रसिद्धि को संभाला देना चाहती है। और उसमें उसने अपना हिस्सेदार नए हीरो को इसलिए बनाया है कि वह मेरी तरह ज़िद्दी नहीं है। वह उसको इस प्रकार अपने साथ ले गई है जिस प्रकार किसी नौकर को ले जाते हैं। यदि उसने मुझे चुना होता तो उसकी स्कीम कभी सफल न होती। मैं कभी उसके इशारे पर न चलता। वह इस समय वापस आने के लिए तैयार है। क्योंकि उसके हिसाब से उसकी वापसी में बहुत दिन ऊपर हो गये हैं.........और मैं तो यह समझता हूँ कि शायद मैं ये बातें भी उसी के कहने अनुसार आपको बता रहा हूँ।"

दूसरे कलाकारों की तरह प्रफुल्ल राय भी परले दरजे का शक्की था। पुराने हीरो की बातों पर उसने फ़ौरन विश्वास कर लिया। लेकिन जब लतिका वापस आई तो उसने सच्चे प्रेमी की तरह शिकवे-शिकायतें शुरू कर दीं और उसको बेवफ़ाई का अपराधी क़रार दिया।

लतिका ख़ामोश रही। उसने अपने निर्दोष होने के बारे में कुछ न रहा। पुराने हीरो ने उसके सम्बन्ध में जो बातें उसके पति से कही थीं, उनके बारे में भी उसने कोई टीका नहीं की। उसके कहने के अनुसार पुराने हीरो की तंख्वाह दुगनी हो गई। अब वह उससे बातें भी करती थी। लेकिन उनके बीच की वह दूरी क़ायम रही जिनकी हदें वह पहले से ही निश्चित कर चुकी थी।

फ़िल्म फिर कामयाब हुआ। जो उसके बाद पेश हुआ उसे भी सफलता मिली। लेकिन इस दौरान में इण्डिया टाकीज़ लिमिटेड के नमूने पर चलकर और कई संस्थायें फ़िल्म-निर्माण की नई राहें खोल चुकी थीं। अनेक नये चहरे

जो लतिका के मुक़ाबले में कई [illegible] आकर्षण स्क्रीन पर पेश हो चुके थे। पुराने हीरो का विचार था कि लतिका [illegible] अपने पति को छोड़कर किसी और फ़िल्म निर्माता आग़ोश में चली जायगी। जो उसके वजूद में नये जज़ीरे ढूँढ सके। लेकिन बहुत दिनों तक कोई ख़ास घटना नहीं घटी।

स्टूडियो में लतिका के सम्बन्ध में हर रोज़ विभिन्न बातें होती थीं। सब यह जानने की कोशिश करते थे कि पति के साथ उसका सम्बन्ध किस प्रकार का है। उनके बारे में कई बातें प्रसिद्ध थीं। जिनमें से एक यह भी थी कि वह अपने साइस के साथ ख़राब है। यह बात पुराने हीरो की फैलाई हुई थी। उसको विश्वास था कि लतिका अपने साइस रामभरोसे के द्वारा अपनी कामवासना की तृप्ति करती है। और अपने पति प्रफुल्ल राय से उसका सम्बन्ध केवल नुमायशी बिस्तर तक सीमित है।

पुराना हीरो अपनी इस बात के सबूत में कहता—"लतिका जैसी औरत इस प्रकार के सम्बन्ध केवल निम्न श्रेणी के नौकर ही से रख सकती है, जो उसके इशारे पर आये और इशारे पर ही चला जाय। जिसकी गर्दन उसके एहसान तले दबी रहे। यदि वह इश्क़ और मुहब्बत करने की योग्यता रखती तो नये हीरो के साथ भाग कर फिर वापस न आती।"............यह उसका स्टण्ट था और उसकी पोल खुल चुकी है।.........तुम विश्वास करो कि उसके दिन लद चुके हैं। वह इसे जानती है और अच्छी तरह समझती है। उसको यह भी मालूम है कि मिस्टर राय की सारी शक्ति उसे बनाने और सँवारने में ख़त्म हो चुकी है। अब वह आम की चुसी हुई गुठली की तरह है। उसमें वह रस नहीं रहा जिससे वह इतने दिनों तक अमृत प्राप्त करती रही थी। तुम देख लेना थोड़े ही दिनों के बाद अपनी काया कल्प कराने के लिए वह किसी और फ़िल्म निर्माता की आग़ोश में चली जायगी।"

लतिका किसी और फ़िल्म निर्माता की आग़ोश में न गई। ऐसा मालूम होता कि यह मोड़ उसके बनाये हुए नक़्शे में नहीं था। नये हीरो के साथ भाग जाने के बाद उसमें प्रकट रूप से कोई अन्तर नहीं आया था। सर हावर्ड पास्कल के साथ सुबह सवेरे बाग़बानी में व्यस्त वह अब भी उसी तरह नज़र

आती थी। स्टूडियो में उसके बारे में जो बातें होती थीं, उनका उसे पता था मगर वह ख़ामोश रहती थी। उसी तरह गम्भीरता से ख़ामोश।

दो फ़िल्म और बने जो बहुत बुरी तरह असफल हुए। इण्डिया टाकीज़ लिमिटेड का उज्ज्वल नाम मैला पड़ने लगा। लता पर इसकी कोई प्रतिक्रिया प्रकट न हुई। मगर स्टूडियो का हर आदमी जानता था कि मिस्टर राय बहुत परेशान हैं। पुराने हीरो ने, जो अपने मालिक की क़द्र करता था और उसका हमदर्द भी था, कई बार उसे राय दी कि वह कम्पनी के बखेड़ों से अलग हो जाय। फ़िल्म-निर्माण का काम अपने शागिर्दों को सौंप दे और खुद आराम और सुकून का जीवन व्यतीत करना शुरू कर दे। मगर इसका कुछ असर न हुआ। ऐसा मालूम होता कि प्रफुल्ल राय एक बार फिर अपने स्वप्न बनाने वाले दिमाग़ की बिखरी हुई शक्तियों को जमा करना चाहता है और लतिका के अस्तित्व के ढीले ताने-बाने में एक नये और देर तक चलने वाले स्वप्न की आकृति उभारने के प्रयत्न में व्यस्त है।

घर के नौकरों से जो खबरें बाहर आती थीं, उनसे पता चलता था कि मिस्टर राय का स्वभाव बहुत चिड़चिड़ा हो गया है। हर समय झुँझलाया रहता है। कभी-कभी ग़ुस्से में आकर लतिका को गन्दी-गन्दी गालियाँ भी देता है, मगर वह ख़ामोश रहती है। रात को जब मिस्टर राय को नींद नहीं आती तो वह उसका सर सहलाती है, पाँव दबाती है और सुला देती है।

पहले मिस्टर राय कभी आग्रह नहीं करते थे कि लतिका उनके पास सोये। पर अब वह कई बार रातों को उठ-उठ कर उसे ढूँढते थे और मजबूर करते थे कि वह उनके साथ सोये। पुराने हीरो को जब ऐसी बातें मालूम होती थीं तो उसे बहुत दुःख होता था—"मिस्टर राय बहुत बड़ा आदमी है, लेकिन अफ़सोस कि उसने अपना दिमाग़ एक ऐसी औरत के क़दमों में डाल दिया है, जो किसी तरह भी इसके योग्य नहीं है। वह औरत नहीं चुड़ैल है। मेरे हाथ में हो तो मैं उसे गोली से उड़ा दूँ! सबसे बड़ी ट्रेजेडी तो यह है कि मिस्टर राय को अब उससे ज्यादा प्रेम होगया है।"

जो ज्यादा गहराइयों में उतरने वाले थे, उनका यह विचार था कि प्रफुल्ल राय में चूँकि अब लतिका को कोई और रंग रूप देने की शक्ति बाक़ी नहीं रही, इसलिये वह झुँझलाकर उसको खराब कर देना चाहता है। अब तक वह उसे एक पवित्र वस्तु समझता रहा था, जिस पर उसने गन्दगी का एक कण भी नहीं गिरने दिया था।

मगर अब वह उसे अपवित्र कर देना चाहता है। गन्दगी में लथेड़ देना चाहता है। ताकि जब वह किसी के मँह से यह सुने कि तुम्हारी लतिका को हमने अमुक-अमुक गन्दगी में साना है तो उसे अधिक दुःख न हो। वह पहले स्वप्नों की नर्म और नाज़ुक दुनिया में बसता था। अब यथार्थ के पत्थरों के साथ अपना और लतिका का सर फोड़ना चाहता है।

* * *

समय गुज़रता गया। इण्डिया टाकीज़ लिमिटेड के बाईसवें फ़िल्म की शूटिंग हो रही थी। प्रफुल्ल राय एक बिल्कुल नया प्रयोग कर रहा था। लेकिन स्टूडियो के लोगों को मालूम नहीं था कि वह किस प्रकार का है। राय के दफ़्तर की बत्ती रात को देर तक जलती रहती थी। घर जाने के बजाय अब वह अक्सर वहीं सो जाता था। कागज़ों के ढेर उसकी मेज़ पर लगे रहते थे। जब उसकी ऐश ट्रे साफ़ की जाती तो जले हुए सिगरेटों का एक ढेर निकलता। कहानी लिखी जा रही थी। मगर किस ढंग की? उसके सिनैरियो डिपार्टमेंट को भी कुछ मालूम नहीं था।

दर्ज़ीखाने के लोग लगभग बेकार थे। एक दिन लतिका वहाँ जा धमकी और उसने अपने लिए लम्बी आस्तीनों वाला काला ब्लाउज़ बनाने का हुक्म दिया। कपड़ा उसकी पसन्द के अनुसार आया। डिज़ाइन भी उसने खुद पसन्द किया। उसके साथ ही उसने काली जॉरजट की साड़ी मंगवाई। फिर हेयर ड्रेसर मिस डिमेलो से अपने नये हेयर स्टाइल के बारे में विस्तृत बातचीत की। ये बातें जब स्टूडियो में आम हुईं तो लोगों ने नये फ़िल्म के बारे में

अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार अनुमान लगाये। पुराने हीरो का यह विचार था कि मिस्टर राय शायद अपने जीवन की ट्रेजेडी पेश करेंगे। लेकिन जब पहली शूटिंग की सूचना बोर्ड पर लगी और सेट पर काम शुरू हुआ तो लोगों को बड़ी निराशा हुई। वही पुराना वातावरण, वही पुराने कपड़े।

शूटिंग हमेशा की तरह नियमित रूप से चल रही थी। लेकिन अचानक एक दिन स्टूडियो में एक हंगामा बरपा हो गया। प्रफुल्ल राय सदैव की भाँति सेट पर प्रकट हुआ। कुछ क्षण उसने शूटिंग देखी और एक दम कैमरामैन पर बरस पड़ा। आव देखा न ताव, ज़ोर का थप्पड़ उसके कान पर जड़ दिया। जिससे वह बेहोश हो गया। पहले तो स्टूडियो के लोग ख़ामोश रहे, लेकिन जब उन्होंने देखा कि मिस्टर राय पर दीवानगी छाई हुई है तो उन्होंने मिलकर उसे पकड़ लिया और घर ले गये।

अच्छे-से-अच्छे डाक्टर बुलाये गये, मगर प्रफुल्ल राय की दीवानगी बढ़ती गई। वह बार-बार लतिका को अपने पास बुलाता था मगर जब वह उसकी नज़रों के सामने आती तो उसका जोश बढ़ जाता था और वह चाहता था कि उसे नोच डाले। इतनी गालियाँ देता था, ऐसे बुरे-बुरे नामों से उसे याद करता था कि सुनने वाले आश्चर्य-चकित होकर एक दूसरे का मुँह देखने लगते थे।

पूरे चार दिन तक प्रफुल्ल राय पर दीवानगी छाई रही। बहुत भयानक दीवानगी। पाँचवे दिन सुबह सवेरे जबकि लतिका सर हावर्ड पास्कल के साथ बाग़बानी में व्यस्त थी, और दबी-दबी ज़ुबान से अपने पति की दुखद बीमारी का ज़िक्र कर रही थी, यह सूचना पहुँची कि मिस्टर राय अन्तिम साँस ले रहे हैं। यह सुनकर लतिका को ग़श आ गया। सर हावर्ड और स्टूडियो के दूसरे आदमी उसको होश में लाने की कोशिश में व्यस्त थे कि दूसरी सूचना पहुँची कि मिस्टर राय का देहान्त हो गया।

दस बजे के लगभग जब लोग अर्थी उठाने के लिए कोठी पहुँचे तो लतिका प्रकट हुई। उसकी आँखें सूजी हुई थीं। बाल परेशान थे। काली साड़ी

और काला ब्लाउज़ पहिने हुए थी। पुराने हीरो ने उसको देखा और बड़ी घृणा से कहा—

"कम्बख़्त को मालूम था कि यह सीन कब शूट किया जाने वाला है..................।"

शादी

खानबहादुर महम्मद असलम खाँ के घर में खुशियाँ खेलिती थीं। और सही मानों में खेलती थीं। उनकी दो लड़कियाँ थीं, एक लड़का। अगर बड़ी लड़की की उम्र १३ वर्ष की होगी तो छोटी की यही ग्यारह-साढ़े ग्यारह और जो लड़का था, जो भी सबसे छोटा मगर देखने में वह अपनी बड़ी बहनों के बराबर मालूम होता था।

तीनों की उम्र जैसा कि प्रकट है उस दौर से गुज़र रही थी जबकि हर-आसपास की चीज़ खिलौना मालूम होती है। घटनायें भी ऐसे आती हैं जैसे रबड़ के उड़ते हुए ग़ुब्बारे। उनसे भी खेलने को जी चाहता है।

खानबहादुर महम्मद असलम खाँ का घर ख़ुशियों का घर था। इसमें सब से बड़ी तीन ख़ुशियाँ उनकी सन्तान थीं। फ़रीदा, सईदा और नजीब। ये तींनों स्कूल जाते थे, जैसे खेल के मैदान में जाते हैं। हँसी खुशी जाते थे, हँसी खुशी वापस आते थे और परीक्षाएँ यूँ पास करते थे जैसे खेल में कोई एक-दूसरे से बाजी ले जाए। कभी फ़रीदा फ़र्स्ट आती थी, कभी नजीब और कभी सईदा।

खानबहादुर महम्मद असलम खाँ बच्चों से निश्चिन्त रिटायर्ड जीवन व्यतीत कर रहे थे। उन्होंने कृषि विभाग में बत्तीस वर्ष नौकरी की थी। मामूली ओहदे से बढ़ते-बढ़ते वह सब से ऊँचे स्थान पर पहुँच गये थे। इस दौरान में उन्होंने बड़ा परिश्रम किया था। दिन-रात दफ़्तरी काम किये थे

अब वह विश्राम कर रहे थे। अपने कमरे में किताबें लेकर पड़े रहते और उनके अध्ययन में व्यस्त रहते। फ़रीदा, सईदा और नजीब कभी-कभी माँ का कोई सन्देश लेकर आते तो वह उसका जवाब भिजवा देते।

रिटायर होने के बाद उन्होंने अपना बिस्तर वहीं अपने कमरे में लगवा लिया था। दिन की तरह उनकी रात भी यहीं गुज़रती थी। दुनिया के झगड़े-टण्टों से बिल्कुल अलग। कभी-कभी उनकी पत्नी, जो अधेड़ उम्र की औरत थी, उनके पास आ जाती और चाहती कि वह उससे दो घड़ी बातें करें। मगर वह शीघ्र ही उसे किसी बहाने से टाल देते। यह बहाना आम तौर पर फ़रीदा और सईदा के दहेज़ से सम्बन्धित होता—"जाओ, यह उम्र चोचले बघारने की नहीं। घर में दो जवान बेटियाँ हैं। उनके दान-दहेज़ की फ़िकर करो। सोना दिन प्रतिदिन मँहगा हो रहा है। दस-बीस तोले ख़रीद कर क्यों नहीं रख लेतीं। समय आयेगा तो फिर चीख़ोगी कि हाय अल्ला! ख़ाली ज़ेवरों पर इतना रुपया उठ रहा है।"

या फिर वह कभी उससे यह कहते—"फर्ख़ुन्दा ख़ानम, मेरी जान, हम बूढ़े हो चुके हैं। तुम्हें अब मेरी फ़िकर और मुझे तुम्हारी फ़िकर एक बच्चे की तरह करनी चाहिये। मेरी सारी पगड़ियाँ लीर-लीर हो चुकी हैं, मगर तुम्हें इतनी तौफ़ीक़ नहीं हुई कि मलमल के दो थान भी मँगवा लो। दो नहीं चार, तुम्हारे और बच्चियों के दुपट्टे भी बन जायेंगे। मेरी समझ में नहीं आता कि तुम चाहती क्या हो? और हाँ वह मेरी दतौनें ख़त्म हो गई हैं।"

फर्ख़ुन्दा ख़ान बहादुर के पलंग पर बैठ जातीं और बड़े प्यार से कहतीं—"सारी दुनिया ब्रश उपयोग में लाती है। आप अभी तक पुरानी लकीर के फ़क़ीर बने हुए हैं।"

ख़ानबहादुर के स्वर में नम्रता आ जाती—"नहीं फर्ख़ुन्दा जान, यह ब्रश और टूथ पेस्ट सब व्यर्थ चीज़ें हैं।"

फर्ख़ुन्दा के अधेड़ चेहरे पर क्षण भर के लिए क्रोध का भाव प्रकट होता। खान बहादुर उसकी तरफ़ देखते और बाहर आँगन में बच्चों की खेल कूद का शोर-ग़ुल सुनते हुए कहते—"फर्ख़ुन्दा, तो कल मलमल के थान आ

जाएँ और लट्टू के भी।" लेकिन फौरन ही, मालूम नहीं क्यों, उनके शरीर पर झुरझुरी सी दौड़ जाती और वह फर्खुन्दा से मना कर देते—"नहीं, नहीं। लट्टा मँगवाने की कोई ज़रूरत नहीं।"

बाहर आँगन में बच्चे खेल-कूद में व्यस्त होते। तीसरे पहर को शादाँ अक्सर उनके साथ होती। यह जो भी नई-नई आई थी लेकिन इनमें फ़ौरन ही घुल-मिल गई थी। सईदा और फ़रीदा तो उसकी प्रतीक्षा करती रहती थीं कि वह कब आये और सब मिलकर 'लुक्कन मीटी' या 'खिट्टू' खेलें।

शादाँ के माँ-बाप ईसाई थे। मगर जब से शादाँ खानबहादुर के घर में दाखिल हुई थी, फ़रीदा की माँ ने उसका असली नाम बदल कर शादां रख दिया था। इसलिए कि वह बड़ी हँसमुख लड़की थी और उनकी बच्चियाँ उससे प्यार करने लगी थीं। शादाँ जब सुबह सवेरे आती तो फ़रीदा, सईदा और नजीब स्कूल जाने की तैयारियों में व्यस्त होते। वह उससे बातें करना चाहते, मगर माँ उनसे कहतीं—"बच्चो, जल्दी करो। स्कूल का समय हो रहा है।"

और बच्चे जल्दी-जल्दी तैयारी करके शादाँ को सलाम करके स्कूल चले जाते।

तीसरे पहर शादाँ जल्दी-जल्दी मुहल्ले के दूसरे कामों से निवृत्त होकर आ जाती और फ़रीदा, सईदा और नजीब खेल में लग जाते और इतना हल्ला मचता कि कभ.-कभी खानबहादुर को अपने कमरे से नौकर के द्वारा कहलाना पड़ता कि हल्ला कम किया जाय। यह हुक्म सुनते ही शादाँ सहम कर अलग हो जाती। मगर फ़रीदा और सईदा उससे कहतीं—"कोई बात नहीं शादाँ, हम इससे भी अधिक हल्ला मचायें तो वह अब कुछ नहीं कहेंगे। एक से अधिक बार वह कोई बात नहीं कहा करते।"

और खेल शुरू हो जाता। कभी 'लुक्कन मीटी', कभी 'खिट्टू' और कभी 'लोडो'।

'लोडो' शादाँ को बहुत पसन्द था। इसलिए कि यह खेल उसके लिए नया था। चुनांचे जब से नजीब लोडो लाया था, शादाँ उसी खेल पर जोर देती। मगर फ़रीदा, सईदा और नजीब तीनों को यह पसन्द नहीं था, इसलिए कि उसमें कोई हँगामा नहीं होता। बस वह जो 'चट्टो' सा होता है। इसमें पाँसा हिलाते और फेंकते रहो। और अपनी गुटें आगे-पीछे करते रहो।

शादाँ खुली-खुली रंगत की मँझोले क़द की लड़की थी। उसकी उम्र फ़रीदा जितनी होगी मगर उसमें यौवन अधिक प्रकट था। जैसे ख़ुद जवानी ने अपनी शोखियों पर लाल पेंसिल से निशान लगा दिए हैं। केवल शराफ़त के लिए, वरना फ़रीदा और सईदा में वह सब रंग, वे सब रेखाएँ, वे सब कोण वर्तमान थे जो उस उम्र की लड़कियों में होते हैं। लेकिन फ़रीदा, सईदा और शादाँ जब पास-पास खड़ी होती तो शादाँ की जवानी होठों-ही-होठों में कुछ गुनगुनाती मालूम होती।

खुली-खुली रंगत, परेशान बाल और धड़कता हुआ दुपट्टा, जो कसकर उसने अपने सीने और कमर के आस-पास बाँधा होता। ऐसी नाक, जिसके नथने मानो हवा में अनजानी सुगन्धें ढूँढ़ने के लिए काँप रहे हैं। कान ऐसे जो ज़रा-सी आहट पर चौंक कर सुनने के लिए तैयार हों। चेहरे की आकृति में कोई विशेषता नहीं थी। यदि कोई दोष गिनने लगता तो बड़ी आसानी से गिन सकता था, केवल उसी हालत में यदि उसका चेहरा, उसके शरीर से अलग रख दिया जाता। मगर ऐसा किया जाना असम्भव था, इसलिए कि उसके चेहरे और उसके बाक़ी शरीर का चोली-दामन का साथ था। जिस तरह चोली अलग करने पर शरीर के लक्षण उसमें बाक़ी रह जाते हैं, उसी तरह उसके चेहरे पर भी रह जाते और उसको फिर उसकी पूर्णता में ही देखना पड़ता।

शादाँ बेहद फुर्तीली थी। सुबह आती और यों मिण्टा-मिण्टी में अपना काम ख़त्म करके ये जा वो जा तीसरे पहर को आती। घण्टा-डेढ़ घण्टा खेल-कूद में लगी रहती। जब ख़ानबहादुर की पत्नी आख़िरकार चिल्ला कर कहतीं—"शादाँ, अब ख़ुदा के लिए काम तो करो।" तो वह वहीं खेल बन्द करके अपने

काम में लग जाती। टोकरा उठाती और दो-दो सीढ़ियाँ एक-एक छलाँग में तय करती कोठे पर पहुँच जाती। वहाँ से निवृत होकर धड़-धड़-धड़ नीचे उतरती और आँगन में झाड़ देना शुरू कर देती।

उसके हाथ में फुर्ती और सफ़ाई दोनों चीज़ें थीं। खानबहादुर और उनकी पत्नी फ़र्खुन्दा को सफ़ाई का बहुत खयाल था। लेकिन मजाल है जो शादाँ ने कभी उनको शिकायत का मौक़ा दिया हो। यही कारण है कि वह उसके खेल-कूद पर कोई आपत्ति नहीं करते थे। यों भी वे उसको प्यार की नज़रों से देखते थे। रौशन खयाल थे इसलिए छूत-छात को व्यर्थ समझते थे।

शुरू-शुरू में तो खानबहादुर की बीवी ने इतनी इजाजत दी थी कि 'लुक्कन मीटी' में यदि कोई शादाँ को छुए तो लकड़ी इस्तेमाल करे। और अगर वह छुए तो भी लकड़ी के टुकड़े से छुए। लेकिन कुछ समय के बाद यह शर्त मिटा दी गई और शादाँ से कहा गया कि वह आते ही साबुन से अपना हाथ-मुँह धो लिया करे।

जब शादाँ की माँ कमाने के लिए आती थी तो खानबहादुर अपने कमरे की किसी चीज़ से उसे छूने नहीं देते थे, मगर शादाँ को इजाज़त थी कि वह सफ़ाई के समय चीजों की झाड़-पोंछ कर सकती है।

सुबह सबसे पहले शादाँ, खानबहादुर के कमरे की सफ़ाई करती थी। वह अखबार पढ़ने में संलग्न रहते। शादाँ हाथ में ब्रश लिए आती तो उनसे कहती—"खानबहादुर साहब, ज़रा बरामदे में चले जाइए!"

खानबहादुर अखबार से नज़रें हटा कर उसकी तरफ़ देखते। शादाँ फ़ौरन उनके पलँग के नीचे से उनके स्लीपर उठाकर उनको पहना देती और वह बरामदे में चले जाते।

जब कमरे की सफ़ाई और झाड़-पोंछ हो जाती तो शादाँ दरवाज़े की देहली के पास ही से कमर में ज़रा-सा झाँकने का मोड़ पैदा करके खान बहादुर को पुकारती—"आजाइये खान बहादुर साहब!"

खानबहादुर साहब अखबार और स्लीपर खड़खड़ाते अन्दर आजाते और शादाँ दूसरे कामों में लग जाती।

शादाँ को काम पर लगे दो महीने होगये थे। ख़ानबहादुर की पत्नी ने एक दिन अनुभव किया कि शादाँ में कुछ परिवर्तन हो गया है। उन्होंने ग़ौर किया तो यही बात समझ में आई कि मुहल्ले के किसी नौजवान से आँख लड़ गई होगी।

अब वह अधिक बन-ठनकर रहती थी। अगर वह पहले कोरी मलमल थी तो अब ऐसा लगता था कि उसे कलफ़ लगा हुआ है। मगर यह कलफ़ भी ऐसा था जो मलमल के साथ उँगलियों में चुना नहीं गया था।

शादाँ दिन-प्रति-दिन बदलती जा रही थी। पहले वह उतरे हुए कपड़े पहनती थी, पर अब उसके शरीर पर नए जोड़े नज़र आते थे। बड़े अच्छे फ़ैशन के। बड़े उम्दा सिले हुए। एक दिन जब वह सफ़ेद लट्ठे की शलवार और फूलों वाली जॉरजट की क़मीस पहिन कर आई तो फ़रीदा को बारीक कपड़े के नीचे सफ़ेद-सफ़ेद गोल चीज़ें नज़र आईं।

'लक्कनमीटी' हो रही थी। शादाँ ने दीवार के साथ मुँह लगाकर ज़ोर से अपनी आँखें मीची हुई थीं। फ़रीदा ने उसकी कमीस के नीचे सफ़ेद-सफ़ेद गोल चीज़ें देखी थीं। वह बौखलाई हुई थी। जब शादाँ ने पुकारा—"छुप गए?" तो फ़रीदा ने सईदा को बाज़ू से पकड़ा और घसीट कर एक कमरे में ले गई और धड़कते हुए दिल से उसके कान में कहा—"सईदा—तुमने देखा, उसने क्या पहना हुआ था?"

सईदा ने पूछा—"किसने?"

फ़रीदा ने उसके कान ही में कहा—"शादाँ ने?"

"क्या पहना हुआ था?"

फ़रीदा की जवाबी सरगोशी सईदा के कान में ग़ड़ाप से ग़ोता लगा गई। जब उभरी तो सईदा ने अपने सीने पर हाथ रखा और एक भिंची-भिंची हैरत की "हैं!" उसके होठों से ख़ुद का घसीटती हुई बाहर निकली।

दोनों बहनें कुछ देर खुसर-पुसर करती रहीं। इतने में धमाका-सा हुआ और शादाँ ने उनको ढूढ लिया। इस पर सईदा और फ़रीदा की तरफ़

से क़ायदे के अनुसार चीखमं दहाड़ होना चाहिए थी, मगर वह चुप रहीं। शादाँ की ख़ुशी की बाक़ी चीखें उसके हलक़ में रुक गईं।

फ़रीदा और सईदा कमरे के अँधेरे कोने में कुछ सहमी-सहमी सी खड़ी थीं। शादाँ भी कुछ भयभीत हो गई। वातावरण के अनुसार उसने अपनी आवाज़ दबाकर उनसे पूछा—"क्या बात है ?"

फ़रीदा ने सईदा के कान में कुछ कहा, सईदा ने फ़रीदा के कान में। दोनों ने एक दूसरी को कोहनियों से टहोके दिए। अन्त में फ़रीदा ने काँपते हुए स्वर में शादाँ से कहा—"यह तुमने..........यह तुमने क़मीस के नीचे क्या पहन रखा है ?"

शादाँ के हलक़ से हँसी के गोल-गोल टुकड़े निकले।

सईदा ने पूछा—"कहाँ से ली तूने यह ?"

शादाँ ने जवाब दिया—"बाज़ार से !"

फ़रीदा ने बड़ी उत्सुकता से पूछा—"कितने में ?"

"दस रुपये में !"

दोनों बहनें एकदम चिल्लाते-चिल्लाते रुक गईं।

"इतनी मँहगी !"

शादाँ ने सिर्फ़ इतना कहा—"क्या हम ग़रीब दिल अच्छी लगने वाली चीज़ें नहीं खरीद सकते ?"

इस बात ने फ़ौरन ही सारी बात ख़त्म करदी। थोड़ी देर ख़ामोशी रही। उसके बाद फिर खेल शुरू हो गया।

खेल जारी था, मगर कहाँ जारी था, यह ख़ानबहादुर की पत्नी की समझ में नहीं आता था। अब तो शादाँ बढ़िया तेल सर में लगाती थी। पहले नंगे पाँव होती थी, पर अब उसके पैरों में उसने सैण्डिल देखे।

खेल यक़ीनन जारी था। मगर ख़ानबहादुर की पत्नी की समझ में यह बात नहीं आती थी कि अगर खेल जारी है, तो उसकी आवाज़ शादाँ के शरीर से क्यों नहीं आती। ऐसे खेल बे आवाज़ और बे निशान तो नहीं हुआ करते। यह कैसा खेल है जो सिर्फ़ कपड़े का बना हुआ है।

उसने कुछ देर इस मामले के बारे में सोचा। लेकिन फिर सोचा कि वह क्यों व्यर्थ में अपना मस्तिष्क थकाए। ऐसी लड़कियाँ खराब हुआ ही करती हैं और कितनी कहानियाँ हैं जो उनकी खराबियों से सम्बन्धित हैं और शहर के गली-कूचों में उन्हीं की तरह रुलती-फिरती हैं।

दिन गुज़रते रहे और खेल जारी रहा।

फ़रीदा की एक सहेली की शादी थी। उसकी माँ खानबहादुर की पत्नी की मुँह-बोली बहन थी। इसलिए सबका जाना जरूरी था। घर में केवल खानबहादुर थे। सरदी का मौसम था। रात को खानबहादुर की पत्नी को यकायक विचार आया कि अपनी गरम शाल मँगवाले। पहले तो उसने सोचा कि नौकर को भेज दे। मगर वह ऐसे सन्दूक़ में पड़ी थी जिसमें गहने-ज़ेवर भी थे। इसलिए उसने नजीब को साथ लिया और अपने घर आई। रात के दस बज चुके थे। उसका विचार था कि दरवाज़ा बन्द होगा। चुनाँचे उसने दस्तक दी। जब किसी ने न खोला तो नजीब ने दरवाज़े को ज़रा-सा धक्का दिया। वह खुल गया।

अन्दर जाकर उसने सन्दूक़ में से शाल निकाली और नजीब से कहा—"जाओ, देखो तुम्हारे अब्बा क्या कर रहे हैं। उनसे कह देना कि तुम तो अभी थोड़ी देर के बाद लौट आओगे लेकिन हम सब कल सुबह आयेंगे, जाओ बेटा!"

सन्दूक़ में चीज़ें ढंग से रखकर वह ताला लगा रही थी कि नजीब वापस आया और कहने लगा "अब्बा जी तो अपने कमरे में नहीं हैं।"

"अपने कमरे में नहीं हैं? अपने कमरे में नहीं हैं तो कहाँ हैं?" खानबहादुर की पत्नी ने ताला बन्द किया और चाबी अपने बैग में डाली।" तुम यहाँ खड़े रहो, मैं अभी आती हूँ।"

यह कहकर वह अपने पति के कमरे में गई जो कि खाली था मगर बत्ती जल रही थी। बिस्तर पर से चादर ग़ायब थी। फ़र्श धुला हुआ था। एक विचित्र-सी गंध कमरे में फैली हुई थी। खानबहादुर की पत्नी चकरा गई कि यह क्या मामला है—पलंग के नीचे झुककर देखा, मगर वहाँ कोई भी

नहीं था, लेकिन एक वस्तु थी। उसने रेंग कर उसे पकड़ा और बाहर निकाल कर देखा, ख़ानबहादुर की मोटी दतौन थी.......... ।

इतने में आहट हुई। ख़ानबहादुर की पत्नी ने दतौन छिपाली। ख़ान बहादुर अन्दर आये और उनके साथ ही मिट्टी के तेल की बू। उनका रंग पीला था, मानो किसी ने सारा रक्त निचोड़ लिया हो,

काँपते हुए स्वर में खानबहादुर ने अपनी पत्नी से पूछा—"तुम यहाँ क्या कर रही हो?"

"कुछ नहीं, शाल लेने आई थी, मैंने सोचा, आपको देखती चलूँ।"

"जाओ!"

खानबहादुर की पत्नी चली गई। कुछ क़दम आँगन में चली होगी कि उसे दरवाज़ा बन्द करने की आवाज़ आई। वह बहुत देर तक अपने कमरे में बैठी रही। फिर नजीब को लेकर चली गई।

दूसरे दिन फ़रीदा की सहेली के घर खानबहादुर की पत्नी को यह ख़बर मिली कि ख़ानबहादुर गिरफ़्तार हो गये हैं। जब उसने पता लगाया तो मालूम हुआ कि जुर्म बहुत संगीन है। शादाँ जब घर पहुँची तो लहू-लोहान थी। वहाँ पहुँचते ही वह बेहोश हो गई। उसके माँ-बाप उसे हस्पताल ले गए। पुलिस साथ थी। शादाँ को वहाँ क्षण भर के लिए होश आया और उसने केवल 'खान बहादुर' कहा। उसके बाद वह ऐसी बेहोश हुई कि हमेशा के लिए सो गई।

जुर्म बहुत संगीन था। जाँच-पड़ताल हुई। मुक़द्दमा चला। इस्तग़ासे के पास कोई आँखों देखी गवाही नहीं थी। एक केवल शादाँ के खून में लिथड़े हुए कपड़े थे और वह दो शब्द जो उसने मरने से पहले अपने मुँह से कहे थे। लेकिन इसके बावजूद इस्तग़ासे को पूरा विश्वास था कि अपराधी ख़ानबहादुर है। क्योंकि एक गवाह ऐसा था जिसने शादाँ को शाम के समय ख़ानबहादुर के घर की तरफ़ जाते देखा था।

सफ़ाई के गवाह केवल दो थे। खानबहादुर की पत्नी और एक डॉक्टर।

डॉक्टर ने कहा कि खानबहादुर इस योग्य ही नहीं कि वह किसी औरत से ऐसा सम्बन्ध स्थापित कर सकें। शादी का तो सवाल ही पैदा नहीं होता क्योंकि वह नाबालिग़ थी। उसकी पत्नी ने उसकी तस्दीक़ की।

खानबहादुर मुहम्मद असलम खाँ बरी हो गए। मुकद्दमे में उन्हें बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। बरी होकर जब घर आये तो उनके दैनिक जीवन में कोई परिवर्तन नहीं पाया गया। एक केवल उन्होंने दतौन का उपयोग छोड़ दिया।

चुग़द

लड़कों और लड़कियों के प्रेम की बातचीत हो रही थी। प्रकाश जो बहुत देर से ख़ामोश बैठा था, अन्दर-ही-अन्दर बड़ी तेज़ी से सोच रहा था, एकदम फट पड़ा, "सब बकवास है। सौ में से निन्नानवे प्रेम बहुत ही भोंडे, लचर और बेहूदा तरीकों से होते हैं। एक बाक़ी रह जाता है, उसमें आप अपनी शाइरी रख लीजिए या अपनी बुद्धिमानी और योग्यता भर दीजिए। मुझे आश्चर्य है तुम सब अनुभवी हो। औसत आदमी से अधिक समझदार हो। जो वास्तविकता है, तुम्हारी आँखों से ओझल भी नहीं है। फिर यह क्या मूर्खता है कि तुम बराबर इस बात पर ज़ोर दिये जा रहे हो कि औरत को आकर्षित करने के लिए कोमल और नाज़ुक शाइरी, सुन्दर चेहरे, अच्छे कपड़े, इत्र, लवेण्डर और जाने किस-किस खुराफ़ात की ज़रूरत है। और मेरी समझ से यह चीज़ तो बिल्कुल बालातर है कि औरत से इश्क़ लड़ाने से पहले सब पहलू सोचकर एक स्कीम बनाने की क्या ज़रूरत हैं ?"

चौधरी ने उत्तर दिया—"हर काम करने से पहले आदमी को सोचना पड़ता है।"

प्रकाश ने फ़ौरन ही कहा, "मानता हूँ—लेकिन यह इश्क़ लड़ाना मेरी दृष्टि से बिल्कुल काम नहीं—यह एक·········एक·········भई तुम ग़ौर क्यों नहीं करते। कहानी लिखना एक काम है। उसे शुरू करने से पहले सोचना ज़रूरी है लेकिन इश्क़ को आप काम कैसे कह सकते हैं।······यह एक ······ यह एक······मेरा मतलब है········इश्क़ मकान बनाना नहीं, जो आपको पहले

नक़्शा बनवाना पड़े—एक लड़की या औरत अचानक आपके सामने आती है। आपके दिल में कुछ गड़बड़-सी होती है। फिर यह इच्छा पैदा होती है कि वह आपके साथ लेटी हो। इसे आप काम कहते हैं?...... यह एक...... यह एक हैवानी तलब है, जिसे पूरा करने के लिए हैवानी तरीक़े ही काम में लाने चाहियें। जब एक कुत्ता, कुतिया से इश्क़ लड़ाना चाहता है तो वह बैठकर स्कीम तैयार नहीं करता। इसी तरह साण्ड जब बू सूँघकर गाय के पास जाता है, तो उसे शरीर पर इत्र लगाना नहीं पड़ता—बुनियादी तौर पर हम सब हैवान हैं। इसलिए इश्क़ और मुहब्बत में जो दुनिया की सबसे पुरानी तलब है, इंसानियत का ज़्यादा हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए।"

मैंने कहा—"तो इसका यह मतलब हुआ कि शेरोशाइरी, चित्रकारी, शिल्पकला, ये सब ललित कलायें व्यर्थ मात्र हैं।"

प्रकाश ने सिगरेट सुलगाया और अपने जोश को ज़रा कम करते हुए कहा—"व्यर्थ मात्र नहीं—मैं समझ गया, तुम क्या कहना चाहते हो। तुम्हारा मतलब यह था कि ललित कलाओं के अस्तित्व का कारण औरत है। फिर ये बेकार कैसे हुए?—असल बात यह है कि उनके अस्तित्व का कारण स्वयं औरत नहीं है, बल्कि मर्द की औरत के बारे में हद से बढ़ी हुई खुशफ़हमी है। मर्द जब औरत के बारे में सोचता है तो और सब कुछ भूल जाता है। वह चाहता है कि औरत को औरत न समझे। औरत को केवल औरत समझने से उसकी भावनाओं को ठेस पहुँचती है। अतएव वह चाहता है कि उसे, सुन्दर से सुन्दर रूप में देखे। यूरोपीय देशों में, जहाँ औरतें फ़ैशन की मतवाली हैं, उनसे जाकर पूछो कि उनके बालों, उनके कपड़ों, उनके जूतों के नित-नये फ़ैशन कौन ईजाद करता है?"

चौधरी ने अपने विशेष बेतकल्लुफ़ाना ढंग से प्रकाश के कन्धे पर हौले से तमाँचा मारा—"तुम बहक गये हो यार—जूतों के डिज़ाइन कौन बनाता है, साँड गाय के पास जाता है तो उसे लवेण्डर लगाना नहीं पड़ता। यहाँ बातें हो रही थीं कि लड़कों और लड़कियों के वही रूमान कामयाब होते हैं, जो शरीफ़ाना ख़तों से प्रारम्भ होते हैं।"

प्रकाश के होंठों के कोने व्यंग से सिकुड़ गये—"चौधरी साहब क़िबला—आप बिल्कुल बकवास करते हैं। शराफ़त को रखिए आप अपने सिगरेट के डिब्बे में और ईमान से कहिए, वह लौण्डिया, जिसके लिए आप पूरा एक बरस, रूमालों को बढ़िया-से-बढ़िया लवेण्डर लगाकर स्कीमें बनाते रहे, क्या आपको मिल गई थी ?"

चौधरी ने ज़रा झेंपकर उत्तर दिया, "नहीं !"

"क्यों ?"

"वह·········वह किसी और से मुहब्बत करती थी।"

"किस से—एक उल्लू के पट्ठे से—एक फेरी वाले बज़ाज से, जिसको न तो, 'ग़ालिब' के शेर याद थे, न कृष्णचन्दर के अफ़साने। जो आपके मुक़ाबले में लवेण्डर लगे रूमाल से नहीं बल्कि अपने मैले तहमद से नाक साफ़ करता था।" प्रकाश हँसा, "चौधरी साहब क़िबला, मुझे अच्छी तरह याद है, आप बड़ी मेहनत से उसे ख़त लिखा करते थे। उनमें आकाश के सब तारे नोचकर आपने चिपका दिये थे। चाँद की सारी चाँदनी समेटकर उनमें फैलादी। मगर उस फेरी वाले बज़ाज़ ने आपकी लौण्डिया को, जिसकी बुद्धि की तीव्रता के आप हर वक्त गीत गाते थे, जिसके सुशील स्वभाव पर आप मर मिटे थे, एक आँख मारकर अपने थानों की गठरी में बाँधा और चलता बना—इसका जवाब है आपके पास ?"

चौधरी मिनमिनाया—"मेरा विचार है जिस रास्ते पर मैं चल रहा था, ग़लत था। उसका मनोवैज्ञानिक अध्ययन भी जो मैंने किया था, सही सिद्ध न हुआ।"

प्रकाश मुस्कराया—"चौधरी साहब क़िबला ! जिस रास्ते पर आप चल रहे थे, वह निश्चित ही ग़लत था। उसका मनोवैज्ञानिक अध्ययन भी जो आपने किया था शत प्रतिशत ग़लत था। और जो कुछ आप कहना चाहते हैं, वह भी ठीक नहीं है। इसलिए कि आपको पत्र-व्यवहार और मनोवैज्ञानिक अध्ययन का कष्ट उठाना ही नहीं चाहिए था—नोटबुक निकालकर उसमें

लिख लीजिए कि सौ में से सौ मक्खियाँ शहर की तरफ़ भागी आयेंगी । और सौ में से निन्नानवे लडकियाँ भोण्डेपन से आकर्षित होंगी ।"

प्रकाश के स्वर में एक ऐसा व्यंग था जिसका निशाना चौधरी की तरफ़ इतना नहीं था, जितना खुद प्रकाश की तरफ़ था ।

चौधरी ने सर को झटका दिया और कहा—"तुम्हारा फ़लसफ़ा मैं कभी नहीं समझ सकता ।"

"कोशिश करो और समझो । कोई ऐसी मुश्किल चीज़ नहीं है । बात यह है कि एक सरल बात को तुमने कठिन बना दिया है । तुम आर्टिस्ट हो । और नोट बुक निकाल कर यह भी लिखलो कि आर्टिस्ट अव्वल दर्जे के मूर्ख होते हैं । मुझे बहुत दया आती है उन पर । कमबख्तों की मूर्खता में भी निष्ठा होती है । दुनिया भर के मसले हल कर देंगे, पर जब किसी औरत से मुठभेड़ होगी तो जनाब ऐसे चक्कर में फँस जाएँगे कि एक गज़ दूर खड़ी औरत तक पहुँचने के लिए पेशावर का टिकट लेंगे और वहाँ पहुँचकर सोचेंगे कि वह औरत आँखों से ओझल कैसे हो गई । चौधरी साहब क़िबला, निकालिए अपनी नोटबुक, और यह लिख लीजिए कि आप अव्वल दर्जे के चुग़द हैं ।"

चौधरी ख़ामोश रहा और मुझे एक बार फिर अनुभव हुआ कि प्रकाश चौधरी को आईना बनाकर उसमें अपनी सूरत देख रहा है । और खुद को गालियाँ दे रहा है । मैंने उससे कहा—"प्रकाश ऐसा लगता है, चौधरी के बजाय तुम अपने आप को गालियाँ दे रहे हो ।

आशा के विरुद्ध उसने उत्तर दिया—"तुम बिल्कुल ठीक कहते हो । इसलिए कि मैं भी एक आर्टिस्ट हूँ । यानी मैं भी—जब दो और दो चार बनते हैं तो खुश नहीं होता । मैं भी क़िबला चौधरी साहब की तरह अमृतसर के कम्पनी बाग़ में औरत से मिलकर फ्रण्टियर मेल से पेशावर जाता हूँ और वहाँ आँखें मलमल कर सोचता हूँ—मेरी प्रेमिका ग़ायब कहाँ हो गई ।" यह कहकर प्रकाश खूब हँसा । फिर चौधरी से सम्बोधित हुआ—"चौधरी साहब, क़िबला हाथ मिलाइए—हम दोनों फिसड्डी घोड़े हैं । इस दौड़ में केवल वही कामयाब होगा जिसके दिमाग़ में केवल एक ही चीज़ हो कि उसे दौड़ना है । यह नहीं

कि काम और वक़्त का सवाल हल करने बैठ जाय—इतने क़दमों में इतना फ़ासला तय होता है तो इतने क़दमों में कितना फासला तय होगा ? ज्योमेट्री है न अलजेबरा—बस बकवास है । क्यों कि बकवास है, इसलिए इसमें पड़ने वाले को बकवास ही से मदद लेनी चाहिए ।"

चौधरी ने उकताए हुए स्वर में कहा—"क्या बकवास करते हो !"

"तो सुनो !" प्रकाश जमकर बैठ गया—"मैं तुम्हें एक सच्ची घटना सुनाता हूँ—मेरा एक दोस्त है । मैं उसका नाम नहीं बताऊँगा । दो बरस हुए वह एक ज़रूरी काम से चम्बा गया । दो दिन के बाद लौटकर उसे डलहौज़ी चले आना था । उसके फ़ौरन बाद अमृतसर पहुँचना था । मगर तीन महीने तक वह लापता रहा, न उसने घर खत लिखा न मुझे । जब वापस आया तो उसकी ज़बानी मालूम हुआ कि वह तीन महीने चम्बा ही में था । वहाँ की एक सुन्दर लड़की से उसे प्रेम हो गया था ।"

चौधरी ने पूछा—"नाकाम रहा होगा ।"

प्रकाश के होंठों पर अर्थभरी मुस्कराहट पैदा हुई—"नहीं-नहीं वह कामयाब रहा । जीवन में उसे एक शानदार अनुभव प्राप्त हुआ । तीन महीने वह चम्बा की सर्दियों में ठिठुरता और उस लड़की से प्रेम करता रहा । वापस डलहौज़ी आने वाला था कि पहाड़ी की एक पगटण्डी पर उस सुन्दरी से उसकी मुठभेड़ हुई सारी सृष्टि सिकुड़कर उस लड़की में समा गई और वह लड़की फैलकर वा—उसको प्रेम हो गया था । क़िबला चौधरी साहब, सुनिए । पन्द्रह दिन तक लगातार वह ग़रीब अपने प्रेम को चम्बा की कड़कड़ाती सर्दी में दिल के अन्दर दबाए, छुप-छुप कर दूर से उस लड़की को देखता रहा । मगर उसके पास जाकर, उससे बातचीत करने की हिम्मत न कर सका । हर दिन शाम को वह सोचता कि दूरी कितनी अच्छी चीज़ है—ऊँची पहाड़ी पर वह बकरियाँ चरा रही है—नीचे सड़क पर उसका दिल धड़क रहा है । आँखों के सामने यह शाइराना दृश्य लाइए और दाद दीजिए इस पहाड़ी पर सच्चा प्रेमी खड़ा है दूसरी पहाड़ी पर उसकी रुपहली शरीर वाली प्रेमिका,बीच में स्वच्छ जल का नाला बह रहा है । सुभान-अल्लाह ! कैसा आकर्षक दृश्य है ! चौधरी साहब क़िबला........"

चौधरी ने टोका—"बकवास मत करो, जो घटना है बयान कर दो।"

प्रकाश मुस्कराया, "तो सुनिए–पन्द्रह दिन तक मेरा दोस्त इश्क़ के हमले का ज़बरदस्त प्रभाव दूर करने में व्यस्त रहा और सोचता रहा कि उसे जल्दी वापस चला जाना चाहिए। इन पन्द्रह दिनों में उसने काग़ज़ पेंसिल लेकर तो नहीं लेकिन दिमाग़-ही-दिमाग़ में उस लड़की से अपनी मुहब्बत की कई बार तलाशी ली। लड़की के शरीर की हर चीज उसे पसन्द थी। लेकिन यह सवाल सामने था कि उसे प्राप्त कैसे किया जाय। क्या एकदम बिना किसी परिचय के वह उससे बातें करना शुरू कर दे ? बिल्कुल नहीं। यह कैसे हो सकता था ? क्यों हो कैसे नहीं सकता ? मगर मानलो उसने मुँह फेर लिया, उत्तर दिये बिना अपनी बकरियों को हाँकती पास से गुज़र गई। जल्दबाज़ी कभी सफल नहीं होती लेकिन उससे बात किये बिना उसे प्राप्त कैसे किया जा सकता है ? एक तरीक़ा है। वह यह कि उसके दिल में अपनी मुहब्बत पैदा की जाय। उसको अपनी तरफ़ आकर्षित किया जाय। हाँ-हाँ ठीक है। लेकिन सवाल यह है आकर्षित कैसे किया जाय—हाथ से इशारा ? नहीं, बिल्कुल पोच है। सो क़िबला चौधरी साहब, हमारा हीरो इन पन्द्रह दिनों में यही सोचता रहा। सोलहवें दिन अचानक बावड़ी पर उस लड़की ने उसकी तरफ़ देखा और मुस्करा दी—हमारे हीरो के दिल की बाछें खिल गईं। लेकिन टाँगें काँपने लगीं। आपने अब टाँगों के बारे में सोचना शुरू किया। लेकिन जब मुस्कराहट का ख़याल आया तो अपनी टाँगें अलग कर दीं और उस लड़की की पिण्डलियों के बारे में सोचने लगा, जो उठी हुई घघरी में से उसे नजर आई थीं। कितनी सुडौल थीं। लेकिन वह दिन दूर नहीं जब वह उन पर बहुत धीरे-धीरे हाथ फेर सकेगा। पन्द्रह दिन और गुज़र गये। इधर वह मुस्कराकर पास से गुज़रती रही। उधर हमारे हीरो साहब जवाबी मुस्कराहट की रिहर्सल करते रहे—सवा महीना हो गया और उनका इश्क़ सिर्फ होंठों ही पर मुस्कराता रहा। आख़िर एक दिन ख़ुद उस लड़की ही ने खामोशी की मुहर तोड़ी और बड़ी अदा से एक सिगरेट माँगा। आपने सारी डिबिया हवाले कर दी, और घर आकर सारी रात कँपकँपाहट पैदा करने वाले स्वप्न देखते रहे। दूसने दिन एक व्यक्ति को डलहौज़ी भेजा और वहाँ

से सिगरेटों के पन्द्रह पैकेट मँगवाकर एक छोटे-से लड़के के हाथ अपनी प्रेमिका को भिजवा दिये। जब उसने अपनी झोली में डाले तो आपके दिल को दूर खड़े हुए बड़ी प्रसन्नता हुई। होते-होते वह दिन भी आ गया, जब दोनों पास-पास बैठ कर बातें करने लगे—कैसी बातें? क़िबला चौधरी साहब, बताइए हमारा हीरो क्या बातें करता था उससे?"

चौधरी ने उसको उकताए हुए स्वर में जवाब दिया, "मुझे क्या मालूम?"

प्रकाश मुस्कराया—"मुझे मालूम है, क़िबला चौधरी साहब—घर से चलते समय वह बातों की एक बहुत लम्बी चौड़ी सूची तैयार करता था—मैं उससे यह कहूँगा, मैं उससे यह कहूँगा। जब वह नाले के पास कपड़े धोती होगी तो मैं धीरे-धीरे जाकर उसकी आँखें मीच लूँगा, फिर उसकी बग़लों में गुद-गुदी करूँगा। लेकिन जब उसके पास पहुँचता और आँखें मीचते और गुद-गुदी करने का विचार आता तो उसे शर्म आ जाती—क्या बचपना है! और वह उससे कुछ दूर हटकर बैठ जाता और भेड़ बकरियों की बातें करता रहता। कई बार उसे विचार आया, कब तक ये भेड़ बकरियाँ उसकी मुहब्बत चरती रहेंगी? दो महीने से कुछ दिन ऊपर हो गए हैं और अभी तक उसके हाथ तक नहीं लगा सका। मगर वह फिर सोचता कि हाथ लगाए कैसे? कोई बहाना तो होना चाहिए। लेकिन फिर उसे ख़याल आता बहाने से हाथ लगाना बिल्कुल बक-वास है। लड़की की तरफ़ से उसे मूक आज्ञा मिलनी चाहिए कि वह उसके शरीर के जिस भाग को भी चाहे हाथ लगा सकता है। अब मूक आज्ञा का सवाल आ जाता उसे कैसे पता चल सकता है कि उसने मूक आज्ञा दे दी है? क़िबला चौधरी साहब, उसका खोज लगाते-लगाते पन्द्रह दिन और बीत गये।"

प्रकाश ने सिगरेट सुलगाया और मुँह से धुँआँ निकालते हुए कहने लगा—"इस दौरान में वे काफ़ी घुल-मिल गये थे, लेकिन इसका असर हमारे हीरो के हक़ में बुरा हुआ। बातचीत के दौरान में उसने लड़की से अपने ऊँचे खानदान का कई बार ज़िक्र किया था। अपने उछृंखल दोस्तों पर कई बार धिक्कार भेजा था जो पहाड़ी देहातों में जाकर ग़रीब लड़कियों को खराब करते थे। कभी दबी ज़ुबान से कभी ज़ोर से अपनी तारीफ़ भी की थी। अब वह

कैसे उस लड़की पर अपनी कामुकता प्रकट करता। ज़ाहिर था कि मामला बहुत टेढ़ा और पेचदार होगया है। मगर इश्क़ की भावना अभी जीवित थी इसलिए उसे आशा थी कि एक दिन खुद लड़की ही स्वयं को थाली में डालकर उसके हवाले कर देगी। अतएव इसी आशा में कुछ दिन और बीत गए। एक दिन कपड़े धोते-धोते लड़की ने जिसके हाथ साबुन से भरे हुए थे, उससे कहा—तुम्हारी माचिस ख़त्म होगई है, मेरी जेब से निकाल लो।" यह जेब ठीक उसकी छाती के उभार के ऊपर थी। हमारा हीरो झेंप गया। लड़की ने कहा—'निकाल लो ना!' थोड़ी-सी हिम्मत पैदा करके उसने अपना काँपता हुआ हाथ बढ़ाया और दो उँगलियाँ बहुत सम्भालकर उसकी जेब में डालीं। माचिस बहुत नीचे थी, घबराया! कहीं और न टकरा जायँ। अतएव बाहर निकाल लीं और अपनी ख़ाली माचिस से तीली निकालकर सिगरेट सुलगाया और लड़की से कहा—'तुम्हारी जेब से माचिस फिर कभी निकाल लूँगा।' यह सुन कर लड़की ने नटखट आँखों से उसकी तरफ़ देखा और मुस्करा दी। हमारे हीरों ने आधा मैदान मार लिया। दूसरा आधा मारने के लिए वह स्कीमें सोचने लगा।

"एक दिन सुबह सवेरे नाले के पास उस तरफ़ बैठा दूसरी तरफ़ ऊँचाई पर उस लड़की को बकरियाँ चराते देख रहा था और उसकी उभरी हुई जेब के माल पर ग़ौर कर रहा था कि नीचे सड़क पर बावड़ी के पास एक मोटर लारी रुकी। सिख ड्राइवर ने बाहर निकलकर पानी पिया और ऊपर उस लड़की की तरफ़ देखा। मेरे दिल में एक जलन-सी पैदा हुई। बावड़ी की मुण्डेर पर खड़े होकर, उस मौबिल ऑइल से लिथड़े हुए सिख ड्राइवर ने फिर एक बार सावित्री की तरफ़ देखा और अपना गन्दा हाथ उठाकर उसे इशारा किया। मेरे जी में आई—पास पड़ा हुआ पत्थर उस पर लुढ़का दूँ। इशारा करने के बाद उसने दोनों हाथ मुँह के इधर-उधर रखकर बहुत ही भोण्डे तरीक़े से पुकारा—'ओ जानी, मैं सदके आऊँ!' मेरे तन-बदन में आग लग गई। सिख ड्राइवर ने ऊपर चढ़ना शुरू किया, मेरा दिल घुटने लगा। कुछ मिनटों ही में वह हरामज़ादा उसके पास खड़ा था। लेकिन मुझे विश्वास था कि यदि

उसने कोई असभ्यता की तो वह छड़ी से उसकी ऐसी मरम्मत करेगी कि सारी उम्र याद रखेगा। मैं उधर से निगाह हटाकर इसी मरम्मत के बारे में सोच रहा था कि एकदम दोनों मेरी आँखों से ओझल होगए। मैं भागा नीचे सड़क की तरफ़। बावड़ी के पास पहुँचकर सोचा—क्या मूर्खता है, व्याकुलता कैसी? लेकिन फिर विचार आया कहीं वह उल्लू का पट्ठा हाथा पाई न कर बैठे इसलिए पहाड़ी पर तेजी से चढ़ना शुरू किया—बड़ी मुश्किल चढ़ाई थी। जगह-जगह कँटीली झाड़ियाँ थीं। उनको पकड़ कर आगे बढ़ना पड़ता था। बहुत दूर ऊपर चला गया पर वे दोनों कहीं दिखाई नहीं दिए। हाँफते-हाँफते मैंने अपने सामने की झाड़ी पकड़ कर खड़े होने की कोशिश की—क्या देखता हूँ, झाड़ी के दूसरी तरफ़ पत्थरों पर सावित्री लेटी है और उस गन्दे ड्राइवर की दाढ़ी उसके चेहरे पर बिखरी हुई है। मेरे-मेरे शरीर के सारे बाल जल गये। एक करोड़ गालियाँ उन दोनों के लिए मेरे दिल में पैदा हुईं, लेकिन एक क्षण के लिए सोचा तो मालूम हुआ कि दुनिया का सबसे बड़ा चुग़द मैं हूँ—उसी समय नीचे उतरा और सीधा लारियों के अड्डे की तरफ़ चल दिया......।"

प्रकाश के माथे पर पसीने की नन्हीं-नन्हीं बूँदें चमकने लगीं।

गोली

अन्दर से अज़ीज़ की बीवी की आवाज़ आई—"आयशा, तुमने रोक क्यों लिया शफ़क़त को ! आने दो—आओ शफ़क़त बेटा, आओ। तुम्हें देखे इतनी मुद्दत होगई है।"

"आया चच्चीजान !" शफ़क़त ने हैट स्टैण्ड की खूँटी पर रखा और अन्दर कमरे में दाखिल हुआ—"आदाब अर्ज़ चच्चीजान !"

अज़ीज़ की बीवी ने उठकर उसको दुआएँ दीं; सर पर हाथ फेरा और बैठ गई। शफ़क़त बैठने लगा तो उसने देखा कि सामने सोफ़े पर दो गोरी-गोरी लड़कियाँ बैठी हैं। एक छोटी थी, दूसरी बड़ी। दोनों की शक्ल आपस में मिलती थी। अज़ीज़ साहब बड़े सुन्दर व्यक्ति थे। उनकी यह सुन्दरता उन लड़कियों में बड़े आकर्षक ढंग से बँटी हुई थी। आँखें माँ की थीं—नीली। बाल भूरे और काफ़ी लम्बे। दोनों की दो-दो चोटियाँ थीं। छोटी का चेहरा बड़ी के मुक़ाबले में अधिक निखरा हुआ था। बड़ी का चेहरा ज़रूरत से ज़्यादा गम्भीर था।

उनकी माँ उनसे सम्बोधित हुई—"बेटा सलाम करो भाई को।"

छोटी ने उठकर शफ़क़त को आदाब अर्ज़ किया। बड़ी ने बैठे-बैठे ज़रा झुककर कहा—"तस्लीमात !"

शफ़क़त ने उचित उत्तर दिया। इसके बाद अज़ीज़ साहब और अफ़्रीका के बारे में बातों का कभी न ख़त्म होने वाला सिलसिला शुरू होगया। निरोबी, टांगानिका, दारुस्सलाम, क़ातीना, युगाण्डा, इन सबकी बातें हुईं। कहाँ का मौसम अच्छा है, कहाँ का ख़राब है। फल कहाँ अच्छे होते हैं। फलों का ज़िक्र छिड़ा तो छोटी ने कहा—"यहाँ हिन्दुस्तान में तो निहायत ही ज़लील फल मिलते हैं।"

"जी नहीं, बड़े अच्छे फल मिलते हैं, बशर्ते कि मौसम हो।" शफ़क़त ने अपने हिन्दुस्तान की आबरू बचाना चाही।

"ग़लत है।" छोटी ने नाक चढ़ाई—"अम्मीजान, ये जो कल आपने मार्किट से माल्टे लिये थे, क्या वहाँ के मचंगों का मुक़ाबला कर सकते हैं ?"

लड़कियों की माँ बोलीं—"शफ़क़त बेटा, यह सही कहती है। यहाँ के माल्टे वहाँ के मचंगों का मुक़ाबला नहीं कर सकते।"

आयशा ने छोटी से पूछा—"तिलअत यह मचंगा क्या होता है, नाम तो बड़ा विचित्र है।"

तिलअत मुस्कराई—"आपा एक फल है। माल्टे और मीठे की तरह इतना लज़ीज़ होता है कि मैं बयान नहीं कर सकती। और रस—एक निचोड़िये यह गिलास, जो तिपाई पर पड़ा है, लबालब भर जाएगा।"

शफ़क़त ने गिलास की तरफ़ देखा और अनुमान लगाने की कोशिश की कि वह फल कितना बड़ा होगा। "एक मचंगे से इतना बड़ा गिलास भर जाता है ?"

तिलअत ने बड़े गर्व से कहा—"जी हाँ।"

शफ़क़त ने यह सुनकर कहा—"तो फल यक़ीनन बहुत बड़ा होगा।"

तिलअत ने सर हिलाया—"जी नहीं बड़ा होता है न छोटा, बस आपके यहाँ के बड़े माल्टे के बराबर होता है यही तो उसकी खूबी है कि रस ही रस होता है उसमें और अम्मीजान, वहाँ का अनन्नास ! बड़ी रोटी के बराबर उसकी एक क़ाश होती है।"

देर तक अनन्नास की बातें होती रहीं। तिलअत बहुत बातूनी थी। अफ्रीक़ा से उसको इश्क़ था। वहाँ की हर चीज़ उसको पसन्द थी। बड़ी जिसका नाम निगहत था, बिल्कुल ख़ामोश बैठी रही। उसने बातचीत में कोई हिस्सा न लिया। शफ़क़त को जब महसूस हुआ कि वह ख़ामोश बैठी रही है, तो वह उससे सम्बोधित हुआ—"आपको शायद इन बातों से कोई दिलचस्पी नहीं।"

निगहत ने अपने होंठ खोले—"जी नहीं। सुनती रही हूँ, बड़ी दिलचस्पी से।"

शफ़क़त ने कहा—"लेकिन आप बोलीं नहीं।"

अज़ीज़ की बीवी ने जवाब दिया—"शफ़क़त बेटा उसकी तबीअत ही ऐसी है।"

शफ़क़त ने ज़रा बेतकल्लुफ़ी से कहा—"चच्चीजान इस उम्र में लड़कियों को ख़ामोशीपसन्द नहीं होना चाहिए। यह भी कोई बात है कि मुँह में घूँगनियाँ डाले बैठे रहो।" फिर वह निगहत से सम्बोधित हुआ—"जनाब आपको बोलना पड़ेगा।"

निगहत के होठों पर एक शर्मीली मुस्कराहट पैदा हुई। "बोल तो रही हूँ भाईजान!"

शफ़क़त मुस्कराया—"तस्वीरों से दिलचस्पी है आपको?"

निगहत ने निगाहें नीची करके जवाब दिया—"जी है।"

"तो उठिये, मैं आपको अपना एल्बम दिखाऊँ दूसरे कमरे में है।" यह कहकर शफ़क़त उठा—"चलिए।"

आयशा ने शफ़क़त का हाथ दबाया। पलट कर उसने अपनी पत्नी की तरफ़ सवालिया नजरों से देखा। उसने आँखों-ही-आँखों में कोई इशारा किया जिसे शफ़क़त न समझ सका। वह आश्चर्यचकित था कि ख़ुदा मालूम क्या बात थी कि उसकी पत्नी ने उसका हाथ दबाया और इशारा भी किया। वह सोच ही रहा था कि तिलअत खट से उठी—"चलिए भाईजान, मुझे दूसरों के एल्बम देखने का बहुत शौक़ है—मेरे पास भी एक कलेक्शन है।"

शफ़क़त तिलअत के साथ दूसरे कमरे में चला गया। निगहत ख़ामोश बैठी रही। शफ़क़त तिलअत को तस्वीरें दिखाता रहा। आदत के अनुसार तिलअत बोलती रही। शफ़क़त का दिमाग़ किसी और तरफ़ था। वह निगहत के सम्बन्ध में सोच रहा था कि वह इतनी ख़ामोश क्यों है? तस्वीरें देखने क्यों न आई। जब उसने उससे चलने के लिए कहा तो आयशा ने उसका हाथ क्यों दबाया? उस इशारे का क्या मतलब था जो उसने आँखों के द्वारा किया था।

तस्वीरें ख़त्म हो गईं। तिलअत ने एल्बम उठाया और शफ़क़त से कहा—"बाजी को दिखाती हूँ। उनको बहुत शौक़ है तस्वीरें जमा करने का।"

शफ़क़त पूछने ही वाला था कि अगर उनको शौक़ है तो वह उसके साथ क्यों न आईं। मगर तिलअत एल्बम उठाकर कमरे से निकल गई। शफ़क़त

बड़े कमरे में दाख़िल हुआ तो निगहत बड़ी दिलचस्पी से एल्बम की तस्वीरें देख रही थी। हर तस्वीर उसे आनन्दित कर रही थी।

आयशा लड़कियों की माँ से बातें करने में व्यस्त, देख रही थी। शफ़क़त कनअँखियों से देखता रहा। उसका चेहरा जो पहले ज़रूरत से ज़्यादा गम्भीरता की धुन्ध में लिपटा हुआ था, अब प्रसन्न था। ऐसा लगता था कि तस्वीरें, जो आर्ट का बेहतरीन नमूना थीं, उसको सन्तोष पहुँचा रही हैं। उसकी आँखों में अब चमक थी। लेकिन जब एक घोड़े और स्वस्थ औरत की तस्वीर आई तो यह चमक मन्द पड़ गई। एक हल्की-सी आह उसके सीने में लरज़ी और वहीं दब गई।

तस्वीरें खत्म हुईं तो निगहत ने शफ़क़त की तरफ़ देखा और बड़े प्यारे ढंग से कहा—"भाई जान शुक्रिया।"

शफ़क़त ने एल्बम निगहत के हाथ से लिया और मेण्टलपीस पर रख दिया। उसके दिमाग़ में खुदबुद हो रही थी। उसको ऐसा लगता था कि कोई बहुत बड़ा भेद इस लड़की की ज़िन्दगी के साथ सम्बन्धित है। उसने सोचा, शायद कोई अपूर्ण रूमान हो या कोई मनोवैज्ञानिक घटना।

चाय आई तो शफ़क़त, निगहत से सम्बोधित हुआ—"उठिए, चाय बनाइए, यह प्रिविलेज लेडीज़ का है।"

निगहत ख़ामोश रही, लेकिन तिलअत फुदक कर उठी—"भाई जान, मैं बनाती हूँ।"

निगहत का चेहरा फिर धुन्ध में लिपट गया। शफ़क़त की जिज्ञासा बढ़ती गई। एक बार जब उसने अकस्मात निगहत को घूर कर देखा तो वह सिटपिटा-सी गई। शफ़क़त को दिल-ही-दिल में इस बात का अफ़सोस हुआ कि उसने क्यों ऐसी अनुचित हरकत की।

चाय पर इधर-उधर की अनेक बातें हुईं। तिलअत ने उनमें सबसे ज़्यादा हिस्सा लिया। टेनिस का ज़िक्र आया तो उसने शफ़क़त को बड़े गर्व से, जो शेख़ी की हद तक जा पहुँचा था, बताया कि वह नैरोबी में नम्बर वन टेनिस प्लेयर थी और पन्द्रह-बीस कप जीत चुकी है।

निगहत बिल्कुल ख़ामोश रही। उसकी ख़ामोशी बड़ी उदास थी। साफ़ प्रकट था कि उसको इस बात का अनुभव है कि वह ख़ामोश है।

एक बात जो शफ़क़त ने ख़ास तौर पर नोट की वह यह थी कि अज़ीज़ की बीवी की ममता का रुख़ ज़्यादातर निगहत की तरफ़ था। उसने ख़ुद उठ कर बड़े प्यार-मुहब्बत से उसे क्रीम रोल दिये। मुँह पोंछने के लिए अपना रुमाल दिया। उससे कोई बात करती थी तो उसमें भी प्यार होता था। ऐसा लगता था कि वह बातों के द्वारा भी उसके सर पर मुहब्बत-भरा हाथ फेर रही है या उसको चुमकार रही है।

रुख़सत का वक़्त आया तो अज़ीज़ की बीवी उठी, बुर्क़ा उठाया। आयशा से गले मिली। शफ़क़त को दुआएँ दीं और निगहत के पास जाकर आँखों में आँसू ला देने वाले प्यार से कहा—"चलो बेटा, चलें।"

तिलअत फुदक कर उठी। अज़ीज़ की बीवी ने निगहत का एक बाज़ू थामा। दूसरा बाज़ू तिलअत ने पकड़ा। उसको उठाया गया। शफ़क़त ने देखा कि उसका निचला धड़ बिल्कुल बेजान है। एक क्षण के लिए शफ़क़त का दिल और दिमाग़ स्थिर हो गया जब वह सम्भला तो उसे अपने अन्दर एक टीस-सी उठती महसूस हुई।

लड़खड़ाती हुई टाँगों पर माँ और बहन का सहारा लिए निगहत ग़ैर यक़ीनी क़दम उठा रही थी। उसने माथे के पास हाथ ले जाकर शफ़क़त और आयशा को आदाब अर्ज़ किया। कितना प्यारा अन्दाज़ था। मगर उसके हाथ ने शफ़क़त के दिल पर जैसे घूँसा मारा। सारा भेद उस पर खुल गया था। सबसे पहला विचार उसके दिमाग़ में यह आया—"क़ुदरत क्यों इतनी बेरहम है? ऐसी प्यारी लड़की और उसके साथ इतना अत्याचार—पाश्विक बर्ताव! इस मासूम का आख़िर गुनाह क्या था, जिसकी सज़ा इतनी कड़ी दी गई?"

सब चले गये। आयशा उनको बाहर तक छोड़ने गई। शफ़क़त एक दार्शनिक बनकर सोचता रह गया। इतने में शफ़क़त के दोस्त आ गये और वह भी अपनी बीवी से निगहत के बारे में कोई बात न कर सका। अपने दोस्तों

के साथ ताश खेलने में ऐसा व्यस्त हुआ कि निगहत और उसके रोग को भूल गया। जब रात होगई और आयशा ने उसे नौकर द्वारा खाने पर बुलाया तो उसे अफ़सोस हुआ कि उसने केवल एक खेल के लिए निगहत को बिल्कुल भुला दिया। अतएव इसका जिक्र उसने आयशा से भी किया। लेकिन उसने कहा—"आप खाना खाइए। विस्तृत बातें फिर हो जायँगी।"

मियाँ-बीवी दोनों इकट्ठे सोते थे। जब से उनकी शादी हुई थी, वे कभी रात को एक-दूसरे से अलग नहीं हुए थे। उनकी शादी को लगभग छः वर्ष हो गए थे; मगर इस दौरान में कोई बच्चा न हुआ था। डाक्टरों का यह कहना था कि आयशा में कुछ दोष है जो केवल ऑपरेशन से दूर हो सकता है। मगर वह इससे बहुत भयभीत थी। पति-पत्नी बहुत प्यार-मुहब्बत का जीवन बिता रहे थे। उनके दरम्यान कोई रंजिश नहीं थी।

रात को वे इकट्ठे लेटते। हमेशा की तरह जब एक-दूसरे के साथ लेटे तो शफ़क़त को निगहत याद आई। उसने एक आह भर कर बीवी से पूछा—"आयशा, निगहत बिचारी को क्या रोग है?"

आयशा ने भी आह भरी और बड़े दुखी स्वर में कहा—"तीन बरस की नन्हीं-मुन्नी बच्ची थी कि टाइफ़ाइड हुआ और निचला धड़ निर्जीव होगया।"

शफ़क़त के दिल में निगहत के लिए सहानुभूति का अपूर्व भाव पैदा हुआ।

उसने अपनी बीवी की पीठ को अपने सीने के साथ लगा लिया और कहा—"आयशा, खुदा क्यों इतना ज़ालिम है?"

आयशा ने कोई जवाब नहीं दिया। शफ़क़त को दिन की घटनाएँ याद आने लगीं, "जब मैंने उससे कहा था कि चलो, मैं तुम्हें एल्बम दिखाता हूँ तो तुमने मेरा हाथ इसीलिए दबाया था कि.........।"

"हाँ हाँ, और क्या?.........आप तो बार-बार........।"

"खुदा की क़सम, मुझे मालूम नहीं था।"

"उसको इसका बहुत एहसास है कि वह अपाहज है।"

"तुमने यह कहा तो मुझे ऐसा मालूम हुआ है कि मेरे सीने में किसी ने तीर मारा है।"

"जब वह आई, तो खुदा की क़सम मुझे बहुत दुख हुआ—बेचारी को पेशाब करना था। माँ और छोटी बहन साथ गईं। इज़ारबन्द खोला—फिर बाँधा—कितनी सुन्दर है। बैठी हो······ ।"

"तो खुदा की क़सम बिल्कुल पता नहीं चलता कि फ़ालिजज़दा है ।"

"बड़ी बुद्धिमान लड़की है।"

"अच्छा ?"

"माँ कहती थी कि उसने कहा था कि अम्मीजान मैं शादी नहीं करूँगी, कुँवारी रहूँगी !"

शफ़क़त थोड़ी देर के लिए खामोश होगया। इसके बाद उसने बहुत दुख अनुभव करते हुए कहा—"तो उसको इस बात का अहसास है कि उससे शादी करने के लिए कोई तैयार न होगा।"

आयशा ने शफ़क़त की छाती के बालों में उँगलियों से कंघी करते हुए कहा—"शफ़क़त साहब, कौन शादी करेगा एक अपाहज से ?"

"नहीं नहीं, ऐसा न कहो आयशा !"

"इतनी बड़ी क़ुर्बानी कौन दे सकता है शफ़क़त साहब ?"

"तुम ठीक कहती हो !"

"खूबसूरत है, अच्छे खाते-पीते माँ-बाप की लड़की है। सब ठीक है, मगर········ ।"

"मैं समझता हूँ········ लेकिन ······ ।"

"मर्दों के दिल में दया कहाँ ?"

शफ़क़त ने करवट बदली—"ऐसा न कहो, आयशा।"

आयशा ने भी करवट बदली। दोनों आमने-सामने होगए—"मैं सब जानती हूँ। कोई ऐसा मर्द ढूँढिए जो इस बिचारी से शादी करने को राज़ी हो।"

"मुझे मालूम नहीं, लेकिन········ ।"

"बड़ी बहन है। ग़रीब को कितना बड़ा दुख है कि उसकी छोटी बहन की शादी की बातचीत हो रही है।"

"सही कहती हो तुम !"

आयशा ने एक लम्बी आह भरी—"क्या बिचारी इसी तरह सारी उम्र कुढ़ती रहेगी !"

"नहीं !" यह कहकर शफ़क़त उठकर बैठ गया।

आयशा ने पूछा—"क्या मतलब ?"

"तुम्हें उससे हमदर्दी है ?"

"क्यों नहीं ?"

"ख़ुदा की क़सम खाकर कहो।"

"हाय, यह भी कोई क़सम खिलवाने की बात है। हर इंसान को उससे हमदर्दी होनी चाहिए।"

शफ़क़त ने कुछ क्षण खामोश रहने के बाद कहा—"तो मैंने एक बात सोची है !"

आयशा ने खुश होकर कहा—"क्या ?"

"मुझे हमेशा इस बात का एहसास रहा है कि तुम बहुत ऊँचे विचारों की औरत हो। आज तुमने मेरे इस ख़याल को सिद्ध कर दिया है—मैंने, ख़ुदा मेरे इस इरादे को दृढ़ता प्रदान करे, मैंने इरादा कर लिया है कि मैं निगहत से शादी कर लूँगा—सारा सवाब तुम्हें मिलेगा।"

थोड़ी देर ख़ामोशी रही। फिर एकदम जैसे गोला-सा फटा—"शफ़क़त साहब, मैं गोली मार दूँगी उसे, अगर आपने उससे शादी की !"

शफ़क़त ने ऐसा अनुभव किया कि उसे ज़बरदस्त गोली लगी है और वह मरकर अपनी बीवी को आग़ोश में दफ़न हो गया।

एक भाई : एक उपदेशक

गाने लिखने वाला अज़ीम गोविन्दपुरी जब ए० बी० सी० प्रोडक्शंज़ में नौकर हुआ तो उसने फौरन अपने दोस्त म्यूज़िक डायरेक्टर भुटसावे के सम्बंध में सोचा, जो मरहठा था। अज़ीम के साथ कई फिल्मों में काम कर चुका था। वह उसकी योग्यता से परिचित था। स्टण्ट फ़िल्मों में आदमी अपने जौहर क्या दिखा सकता है। बिचारा गुमनामी के खड्डे में पड़ा था।

अतएव अज़ीम ने अपने सेठ से बात की और कुछ इस ढंग से कि उसने भुटसावे को बुलाया और उसके साथ एक फ़िल्म का कण्ट्रैक्ट तीन हज़ार रुपए में कर लिया। कण्ट्रैक्ट पर दस्तख़त करते ही उसे पाँच सौ रुपए मिले, जो उसने उधार के अदा कर दिये। अज़ीम गोविन्द पुरी का वह बड़ा आभारी था। चाहता था कि उसकी कोई सेवा करे। मगर उसने सोचा कि आदमी सज्जन है और निस्वार्थी। कोई बात नहीं, अगले महीने सही। क्योंकि हर महीने उसे पाँच सौ रुपए कण्ट्रैक्ट के अनुसार मिलने थे। उसने अज़ीम से कुछ न कहा। दोनों अपने-अपने काम में व्यस्त थे।

अज़ीम ने दस गाने लिखे, जिनमें से सेठ ने चार पसन्द किये। भुटसावे ने संगीत के विचार से केवल दो। उनकी उसने अज़ीम के सहयोग से धुनें तैयार कीं जो बहुत पसन्द की गईं।

पन्द्रह-बीस दिन तक रिहर्सलें होती रहीं। फ़िल्म का पहला गाना कोरस था। उसके लिए कम-से-कम दस गाने वाली लड़कियों की ज़रूरत थी

प्रोडक्शन मैनेजर से कहा गया। मगर जब वह प्रबन्ध न कर सका तो भुटसावे ने मिस माला को बुलाया, जिसकी आवाज़ अच्छी थी। इसके अलावा वह पाँच-छः और लड़कियों को जानती थी, जो सुर में गा लेती थीं। मिस माला खाण्डे-कर, जैसाकि उसके नाम से प्रकट है, कोल्हापुर की मरहठन थी। दूसरों के मुक़ाबले में उसका उर्दू उच्चारण ज़्यादा साफ़ था। उसको यह ज़ुबान बोलने का शौक़ था। उम्र भी अधिक नहीं थी लेकिन चेहरे से पक्कापन टपकता था। बातें भी इस ढंग से करती कि मालूम होता अच्छी-खासी उम्र की है। जीवन के उतार-चढ़ाव से परिचित। स्टूडियो के हर कर्मचारी को भाईजान कहती और हर आने-जाने वाले से बहुत जल्द घुलमिल जाती।

उसको जब भुटसावे ने बुलाया तो वह बहुत ख़ुश हुई। उसके ज़िम्मे यह काम किया गया कि वह कोरस के लिए फ़ौरन दस गाने वाली लड़कियों का प्रबन्ध कर दे। वह दूसरे ही दिन बारह लड़कियाँ ले आई। भुटसावे ने उनका टेस्ट लिया। सात काम की निकलीं। बाक़ी को छुट्टी देदी गई। उसने सोचा कि चलो ठीक है, सात ही काफ़ी हैं। जगताप साउण्ड रेकार्डिस्ट से सलाह ली। उसने कहा मैं सब ठीक कर लूँगा। ऐसी रेकार्डिंग करूँगा कि लोगों को मालूम होगा कि बीस लड़कियाँ गा रही हैं।

जगताप अपने काम को समझता था। अतएव इसके रेकार्डिंग के लिए साउण्ड प्रूफ़ कमरे के बजाय साज़िन्दों और गाने वालियों को एक ऐसे कमरे में बिठाया, जिसकी दीवारें सख़्त थीं। और उन पर ऐसा कोई प्लास्टर चढ़ा हुआ नहीं था कि आवाज़ दब जाय। फ़िल्म 'बेवफ़ा' का मुहूर्त्त इसी कोरस से हुआ। सैकड़ों व्यक्ति आये। उनमें बड़े-बड़े फ़िल्मी सेठ और डिस्ट्रीब्यूटर्ज़ थे। ए० बी० सी० प्रोडक्शंज़ के मालिक ने बड़ा अच्छा प्रबन्ध किया था।

पहले गाने की दो-चार रिहर्सलें हुईं। मिस माला खाण्डेकर ने भुटसावे को पूरा-पूरा सहयोग दिया। सातों लड़कियों को अलग-अलग चेतावनी दी कि सावधान रहें और कोई ग़लती न होने दें। भुटसावे पहली ही रिहर्सल से सन्तुष्ट था। लेकिन उसने अधिक सन्तोष के लिए कुछ और रिहर्सल करवाईं। उसके बाद जगताप से कहा कि वह अपना इत्मीनान करले। उसने जब साउण्ड-ट्रक में

यह कोरस पहली बार हेडफ़ोन लगाकर सुना तो खुश होकर बहुत ऊँचा 'ओके' कह दिया। हर साज़ और हर आवाज़ अपनी सही जगह पर थी।

मेहमानों के लिए माइक्रोफ़ोन का प्रबन्ध कर दिया गया था। रेकार्डिंग शुरू हुई तो उसे ऑन कर दिया गया। भुटसावे की आवाज़ भोंपू से निकली—"सांग नं० १, टेक फ़र्स्ट, रेडी, वन, टू।"

और कोरस शुरू हो गया।

बहुत अच्छी कम्पोज़ीशन थी। सात लड़कियों में से किसी एक ने भी कहीं शब्द में ग़लत सुर न लगाया। मेहमान बहुत खुश हुए। सेठ, जो संगीत क्या होता है, इससे भी अनभिज्ञ था बहुत खुश हुआ इसलिए कि सारे मेहमान इस कोरस की तारीफ़ कर रहे थे। भुटसावे ने साज़िन्दों और गाने वालियों को शाबाशी दी। ख़ास तौर पर उसने मिस माला का शुक्रिया अदा किया, जिसने उसको इतनी जल्दी गाने वालियाँ ला दीं। इसके बाद वह जगताप साउण्ड रेकार्डिस्ट से गले मिल रहा था कि ए० बी० सी० प्रोडक्शंज़ के मालिक सेठ रणछोड़दास का आदमी आया कि वह उसे बुला रहे हैं। अज़ीम गोविन्दपुरी को भी।

दोनों भागे। स्टूडियो के उस सिरे पर गये जहाँ महफ़िल जमी थी। सेठ साहब ने सब मेहमानों के सामने एक सौ रुपए का हरा नोट इनाम के रूप में पहले भुटसावे को दिया। फिर दूसरा अज़ीम गोविन्दपुरी को। वह छोटा-सा बाग़ीचा, जिसमें मेहमान बैठे थे तालियों की आवाज़ से गूँज उठा।

जब मुहूर्त की यह महफ़िल बर्ख़ास्त हुई तो भुटसावे ने अज़ीम से कहा—"माल-पानी है, चलो आउट डोर चलें।"

अज़ीम इसका मतलब नहीं समझा—"आउट डोर कहाँ?"

भुटसावे मुस्कराया—"माझे मुल्गे, मौज-शौक़ करने जायँगे। सौ रुपए तुम्हारे पास हैं, सौ हमारे पास—चलो।"

अज़ीम समझ गया। लेकिन वह उसके मौज-शौक़ से डरता था। उसकी पत्नी थी। दो छोटे-छोटे बच्चे थे। उसने कभी ऐयाशी नहीं की थी। मगर इस वक्त वह खुश था। उसने अपने दिल से कहा—"चल रे, देखेंगे क्या होता है?"

भुटसावे ने फ़ौरन टैक्सी मँगवाई। दोनों उसमें बैठे और ग्राण्टरोड पहुँचे। अज़ीम ने पूछा—"हम कहाँ जा रहे हैं भुटसावे ?"

वह मुस्कराया—"अपनी मौसी के घर।"

और जब वह अपनी मौसी के घर पहुँचा तो वह मिस माला खाण्डेकर का घर था। वह उन दोनों से बड़े तपाक से मिली। उन्हें अन्दर अपने कमरे में ले गई। होटल से चाय मँगवाकर पिलाई। चाय पीने के बाद भुटसावे ने उससे कहा—"हम मौज-शौक़ के लिए निकले हैं। तुम्हारे पास·········तुम हमारा कोई बन्दोबस्त करो।

माला समझ गई। वह भुटसावे की आभारी थी। इसलिए उसने फ़ौरन मराठी भाषा में कुछ कहा जिसका मतलब यह था कि मैं हर सेवा के लिए तैयार हूँ।

वास्तव में भुटसावे अज़ीम को खुश करना चाहता था, इसलिए कि उसने उसे काम दिलवाया था। अतएव भुटसावे ने मिस माला से कहा कि वह एक लड़की का प्रबन्ध कर दे।

मिस माला ने अपना मेकअप जल्दी-जल्दी ठीक किया और तैयार हो गई। सब टैक्सी में बैठे। पहले मिस माला प्लेबैक सिंगर शान्ता किरनाकिरन के घर गई। मगर वह किसी और के साथ बाहर जा चुकी थी। फिर वह अनूसूया के घर गई। मगर वह इस योग्य नहीं थी कि उनके साथ ऐसी मुहिम पर जा सके।

मिस माला को बहुत अफ़सोस था कि उसे दो जगह निराशा का मुँह देखना पड़ा। लेकिन उसे आशा थी कि मामला हो जायगा। अतएव टैक्सी गोलपीठे की तरफ़ चल । वह कृष्णा थी। पन्द्रह-सोलह वर्ष की गुजराती लड़की। बड़े कोमल स्वरों में गाती थी। माला उसके घर में दाख़िल हुई और कुछ ही क्षणों में उसको लेकर बाहर निकल आई। भुटसावे को उसने हाथ जोड़कर नमस्कार किया और अज़ीम को भी। माला ने ठेठ दल्लालों के ढंग से अज़ीम को आँख मारी और मानो मूक भाषा में उससे कहा—"यह आपके लिए है।"

झुटसावे ने इस पर आँखों-ही-आँखों में स्वीकृति देदी। कृष्णा अज़ीम गोविन्दपुरी के पास बैठ गई। क्योंकि माला ने उसे सब कुछ बता दिया था, इसलिए वह उससे चुहलें करने लगी। अज़ीम लड़कियों की-सी लज्जा अनुभव कर रहा था। झुटसावे उसके स्वभाव से परिचित था। इसलिए उसने टैक्सी एक बार सामने ठहराई और केवल अज़ीम को अपने साथ लेकर अन्दर गया।

गीतकार ने केवल एक-दो बार पी थी, वह भी कारोबारी सिलसिले में। यह भी कारोबारी सिलसिला था अतएव उसने झुटसावे के आग्रह पर दो पैग रम के पी लिए और उसको नशा हो गया। झुटसावे ने एक बोतल ख़रीद कर अपने साथ रख ली। अब वे फिर टैक्सी में थे।

अज़ीम को इस बात का पता नहीं था कि उसका दोस्त झुटसावे दो गिलास और सोडे की बोतलें साथ ले आया है।

अज़ीम को बाद में मालूम हुआ कि झुटसावे प्लेबैक सिंगर कृष्णा की माँ से यह कह आया था कि जो कोरस दिन में लिया गया था, उसके जितने टेक थे, सब ख़राब निकले हैं। इसलिए रात को फिर रेकार्डिङ्ग होगी। उसकी माँ वैसे कृष्णा को बाहर जाने की आज्ञा कभी न देती। मगर जब झुटसावे ने कहा कि उसे और रुपए मिलेंगे तो उसने अपनी बेटी से कहा कि जल्दी जाओ और निवृत्त होकर सीधी यहाँ आओ। वहाँ स्टूडियो में मत बैठी रहना।

टैक्सी वरली पहुँची, यानी समुद्र के किनारे। यह वह स्थान था जहाँ ऐशपरस्त किसी-न-किसी औरत को बग़ल में दबाए आया करते थे। एक पहाड़ी-सी थी। मालूम नहीं नक़ली या क़ुदरती, उस पर चढ़ते। काफ़ी लम्बी चौड़ी समतल जगह थी। उसमें लम्बे फ़ासलों पर बेंचें रखी हुई थीं, जिन पर केवल एक-एक जोड़ा बैठता। सब के बीच में अनलिखा समझौता होता था कि वे एक-दूसरे के मामले में बाधक नहीं होंगे। झुटसावे ने जो कि अज़ीम की दावत करना चाहता था, वरली पहाड़ी पर कृष्णा को उसके सुपुर्द कर दिया और ख़ुद माला के साथ टहलता-टहलता एक तरफ़ चला गया।

अज़ीम और भुटसावे के बीच कोई डेढ़ सौ गज़ का फ़ासला होगा। अज़ीम जिसने ग़ैर औरत के बीच हज़ारों मील का फ़ासला अनुभव किया था, जब कृष्णा को अपने साथ लगे देखा तो उसका ईमान डोलने लगा। कृष्णा ठेठ मरहठी लड़की थी, साँवली-सलोनी, बड़ी मज़बूत, भरी हुई जवानी और उसमें वे तमाम दावतें थीं जो किसी खुल खेलने वाली लड़की में हो सकती हैं। अज़ीम चूँकि नशे में था, इसलिए वह अपनी पत्नी को भूल गया और उसके दिल में इच्छा पैदा हुई कि कृष्णा को थोड़े समय के लिए पत्नी बना ले।

उसके दिमाग़ में विभिन्न शरारतें पैदा हो रही थीं। कुछ रम के कारण और कुछ कृष्णा की संगति के कारण। आम तौर पर वह गम्भीर रहता था। बहुत कम बोलता था। लेकिन इस समय उसने कृष्णा के गुदगुदी की। उसको कई चुटकुले अपनी टूटी-फूटी गुजराती में सुनाए। फिर जाने उसे क्या विचार आया कि ज़ोर से भुटसावे को आवाज़ दी और कहा—"पुलिस आ रही है, पुलिस आ रही है।"

भुटसावे माला के साथ आया। अज़ीम को मोटी-सी गाली दी और हँसने लगा। वह समझ गया था कि अज़ीम ने उससे मज़ाक किया था। लेकिन उसने सोचा कि बेहतर यही है कि किसी होटल में चलें जहाँ पुलिस का ख़तरा न हो। चारों उठ रहे थे कि पीली पगड़ी वाला प्रकट हुआ। उसने ठेठ सिपाहियाना ढंग से पूछा—"तुम लोग रात के ग्यारह बजे यहाँ क्या कर रहा है? मालूम नहीं दस बजे से पीछे यहाँ बैठना ठीक नहीं, कानून है।"

अज़ीम ने सन्तरी से कहा—"जनाब, अपन फिल्म का आदमी है। यह छोकरी," उसने कृष्णा की तरफ़ देखा, "यह भी फ़िल्म में काम करती है। हम लोग किसी बुरे विचार से यहाँ नहीं आये। यहाँ पास ही जो स्टूडियो है, उसमें काम करते हैं। थक जाते हैं तो यहाँ चले आते हैं कि थोड़ा दिल बहल जाय। बारह बजे हमारी शूटिङ्ग फिर शुरू होने वाली है।"

पीली पगड़ी वाला सन्तुष्ट हो गया। फिर भुटसावे से सम्बोधित हुआ—"तुम इधर क्यों बैठा है?"

भुटसावे पहले घबराया। लेकिन फ़ौरन सम्भल कर उसने माला का हाथ अपने हाथ में लिया और सन्तरी से कहा—"यह हमारा वाइफ़ है। हमारी टैक्सी नीचे खड़ी है।"

थोड़ी-सी और बातचीत हुई और चारों का पीछा छूटा। इसके बाद उन्होंने टैक्सी में बैठकर सोचा कि किस होटल में चलें। अज़ीम को ऐसे होटलों के बारे में कोई जानकारी नहीं थी, जहाँ आदमी कुछ घण्टों के लिए किसी ग़ैर औरत के साथ एकान्त में रह सके। भुटसावे ने बेकार उससे सलाह ली। उसे फ़ौरन डाक यार्ड का 'सी व्यू' होटल याद आया और उसने टैक्सी वाले से कहा कि वहाँ ले चलो। 'सी व्यू' होटल में भुटसावे ने दो कमरे लिए। एक में अज़ीम और कृष्णा चले गए, दूसरे में मिस माला खाण्डेकर और भुटसावे। कृष्णा उसी तरह मुजस्सिम दावत थी, लेकिन अज़ीम जिसने दो पैग और पी लिए थे, दार्शनिक रंग में आ गया था। उसने कृष्णा को ग़ौर से देखा और सोचा कि इतनी कम उम्र की लड़की ने पाप का यह भयानक रास्ता क्यों पकड़ा है? ख़ून की कमी के बावजूद, उसमें इतनी गर्मी क्यों है? कब तक यह कोमल और नाज़ुक लड़की जो गोश्त नहीं खाती, अपना पोस्त बेचती रहेगी? अज़ीम को उस पर बड़ा तरस आया। अतएव उसने उपदेशक बन कर उससे कहना शुरू किया—"कृष्णा, पाप के जीवन से हट जाओ। खुदा के लिए इस रास्ते से, जिस पर तुम आगे बढ़ रही हो, अपने क़दम हटा लो। यह तुम्हें ऐसे अंधेरे में ले जायगा जहाँ से तुम निकल न सकोगी। सतीत्व बेचना इंसान का सबसे गिरा हुआ काम है। यह रात अपने जीवन की उज्ज्वल रात समझो; इसलिए कि मैंने तुम्हें अच्छा बुरा समझा दिया है।"

कृष्णा ने इसका जो मतलब समझा वह यह था कि अज़ीम उससे प्रेम कर रहा है। अतएव वह उसके साथ चिमट गई और अज़ीम अपने पाप और पुण्य का उपदेश भूल गया।

बाद में वह बड़ा लज्जित हुआ। कमरे से बाहर निकला तो भुटसावे बरामदे में टहल रहा था। कुछ इस ढंग से जैसे उसे भिड़ों के पूरे छत्ते ने काट

लिया है और उनके डंक उसके सारे शरीर में चुभे हुए हैं। अज़ीम को देख कर वह रुक गया। सन्तुष्ट कृष्णा की ओर एक दृष्टि डाली और क्रोध-भरे स्वर में अज़ीम से कहा—"वह साली चली गई।"

अजीम जो अपनी लज्जा में डूबा हुआ था, चौंका—"कौन ?"

"वही माला !"

"क्यों ?"

भुटसावे के स्वर में एक विचित्र झुंझलाहट थी—"हम उसको इतना वखत चूमते रहे। जब बोला कि आओ, तो साली कहने लगी, "तुम हमारा भाई है। हमने किसी से शादी करली है"—और बाहर निकल गई, "कि वह साला घर में आ गया होगा।"

मनोरंजन

पिछले दिनों की बात है जब हम बरसात में सड़कें साफ करके अपना पेट पाल रहे थे।

हम में से कुछ किसान थे और कुछ मज़दूर पेशा। चूँकि पहाड़ी देहातों में रुपये का मुँह देखना बहुत कम नसीब होता है इसलिए हम सब खुशी-खुशी छः आने रोज़ाना पर सारा दिन पत्थर हटाते रहते थे जो बारिश के ज़ोर से साथ वाली पहाड़ियों से लुढ़क कर सड़क पर आ गिरते थे। पत्थरों को सड़क पर से हटाना तो खैर एक मामूली बात थी, हम तो उस मेहनताने पर उन पहाड़ियों को ढाने पर भी तैयार थे, जो हमारे आस-पास काले और ड़रावने देवों की तरह अकड़ी खड़ी थीं। वास्तव में हमारे बाज़ू कड़ी से कड़ी मेहनत के आदी थे, इसलिए यह काम हमारे लिए बिल्कुल मामूली था। अलबत्ता जब कभी हमें सड़क को चौड़ा करने के लिए पत्थर काटने होते तो रात को हमें बहुत थकान अनुभव होती। पुट्ठे अकड़ जाते और सुबह उठते समय ऐसा अनुभव होता कि वे सब पत्थर जिन्हें हम पिछले रोज़ काटते और फोड़ते रहे हैं, हमारे जिस्मों पर बोझ डाले हुए हैं, मगर ऐसा कभी-कभी ही होता था।

हमारा काम हर रोज़ सुबह सात बजे शुरू होता था जब उदय होते हुए सूर्य की किरणें चीड़ के ऊँचे वृक्षों से छन-छनकर हमारे पास वाले नाले

के क्रोधित पानी से अठखेलियाँ कर रही होतीं और आस-पास की झाड़ियों में नन्हें-नन्हें पक्षी अपने गले फुला-फुला कर चीख रहे होते। यों कहिए हम कुदरत को अपने ख्वाब से जागता हुआ देखते थे। सुबह की हल्की-हल्की हवा में शबनम से ढकी हुई हरी झाड़ियों की चित्ताकर्षक सरसराहट, नाले में पत्थर के कणों से खेलते हुए झागदार पानी का शोर और बरसात में भीगी हुई मिट्टी की भीनी-भीनी सुगंध—चन्द ऐसी चीज़ें थीं जो हमारे संगीन सीनों में एक ऐसी मधुरता पैदा कर देती थीं जो ज़िन्दगी के उस दोजख़ में जन्नत के ख़्वाब दिखाने लगतीं।

हमें हर रोज़ बारह घण्टे काम करना पड़ता था, यानी सारा दिन हम सड़क की मोरियों और पत्थरों को साफ करते रहते थे। यह काम दिलचस्प न था मगर हमने उस अरोचकता को दूर करने के लिए एक तरीक़ा खोज निकाला था। जब हम उस पहाड़ी के नीचे एकत्रित मलबे को अपने बेलचों से हटा रहे होते, जिसके पथरीले कण हर वक्त सड़क पर गिरते थे, तो हम एक सुर में कोई पहाड़ी गीत शुरू कर देते। मलबे के पत्थरों से टकराकर हमारे बेलचों की झंकार उस गीत की ताल का काम देती थी। यह गीत वह उदासी दूर कर देता जो यह अरोचक काम हमारे दिलों में पैदा कर देता था। जब तक उसके सुर हमारी चौड़ी छातियों में से निकलते रहते, हम अनुभव तक न करते कि इस दौरान में हमने मलबे के एक बहुत बड़े ढेर को साफ कर लिया है।

मोटर लारियों के आवागमन से भी हमारा दिल बहला रहता था, जो रंगबिरंगे मुसाफिरों को काश्मीर से वापस या काश्मीर की तरफ ले जाती रहती थीं। जब कभी कोई लारी हमारे पास से गुज़रती तो हम कुछ समय के लिए अपनी झुकी हुई कमरें सीधी करके सड़क के एक तरफ खड़े हो जाते और ज़मीन पर अपने बेलचे टेक कर उसको सामने वाले मोड़ के पीछे गुम होते देखते रहते। इन लारियों को इतनी दूर तक देखते रहने का मक्सद यह था कि हम थोड़ा सुस्तालें। मगर कभी-कभी उन लारियों की शानदार सामान से लदी हुई छतें और उनकी खिड़कियों से मुसाफिरों के लहराते रेशमी कपड़ों की झलक हमारे दिलों में एक अकथनीय कटुता पैदा कर देती थी और हम अपने आपको

उन पत्थरों की तरह फिजूल और निकम्मा समझने लगते थे जिनको हमारे बेलचों के धक्के इधर-उधर पटकते रहते थे। उन मुसाफिरों के तरह-तरह के कपड़े देखकर जिन पर निश्चय ही बहुत से रुपए खर्च हुए होंगे, हम अनायास ही अपने कपड़ों की तरफ देखना शुरू कर देते थे।

हम में से अक्सर का लिबास—पट्टू का तंग पायजामा, गाढ़े की कमीज़ और लुधियाने की सदरी था। सब के पायजामे या तो घुटनों पर से घिस-घिस कर इतने बारीक हो गए थे कि उनमें से शरीर के बालों की पूरी नुमाइश होती थी या बिल्कुल फटे हुए थे। कमीज़ों और सदरियों की भी यही हालत थी। उन पर जगह-जगह विभिन्न रंग के पैबन्द लगे हुए थे। क़रीब-क़रीब हम सब की क़मीज़ों के बटन ग़ायब थे, इसलिए सीने आम तौर पर खुले रहते थे और काम करते वक्त उन पर पसीने की बूँदें साफ नज़र आ सकती थीं।

बारह बजे के क़रीब हम काम छोड़कर खाना खाने के लिए सड़क के नीचे उतर कर पेड़ के साए तले बैठ जाते थे। यह खाना हम सुबह कपड़े में बाँध कर अपने साथ लाते थे। तीन 'ढोडे' (मक्की की मोटी रोटियाँ) और आम तौर पर सरसों का साग होता था जिसको हम अपने भूखे पेट में डालते। खाने के बाद हम पानी आम तौर से नाले से पिया करते थे और जिस रोज़ बारिश की ज्यादती के कारण उसका पानी ज्यादा गदला हो जाता तो हम दूर सड़क के उस पार चले जाया करते थे जहाँ साफ पानी का एक चश्मा फूटता था।

खाने से निपट कर हम फौरन काम शुरू कर दिया करते थे। गो हमारा जी चाहता था कि नर्म-नर्म घास पर लेट कर थोड़ी देर सुस्तालें और फिर काम शुरू करें, मगर यह क्योंकर हो सकता था जबकि हमें हर वक्त इस बात का ख्याल रहता था कि पूरा काम किए बिना मजूरी नहीं मिलेगी।

हमारा उद्देश्य काम करना और इस हीले से अपना पेट पालना था और चूँकि हमें मालूम था कि हम में से किसी ने अगर अपने काम में ज़रा सी सुस्त-रफ्तारी या बेदिली प्रकट की तो ताश की गड्डी से निकम्मे जोकर की तरह बाहर निकाल कर फेंक दिया जायगा। इसलिए हम दिल लगा कर काम

किया करते थे ताकि हमारे अफ़सरों को शिकायत का मौका न मिले। इसके ये मायने नहीं हैं कि हमारे अफ़सर हमसे बहुत खुश थे, यह क्योंकर हो सकता है, वे बड़े आदमी ठहरे! इसलिए उनका जायज़ और नाजायज़ तौर पर ख़फ़ा होना भी दुरुस्त होता है। कभी-कभी ये लोग ऐसे ही हमारे काम का मुआयना करते वक्त अपने असन्तोष का इज़हार करते हुए हम पर बरस पड़ते थे लेकिन हम, जो उनकी बड़ाई को खूब समझते थे, महाराज, महाराज कह कर उनका गुस्सा सर्द कर दिया करते थे। हम जानते थे कि उनका गुस्सा बिल्कुल बेजा है लेकिन यह एहसास हमारे दिलों में नफ़रत के भाव पैदा नहीं करता था। शायद इसलिए कि सलामों ने हमें बिल्कुल मुर्दा बना रखा था या फिर इसकी वजह यह भी हो सकती है कि हमें यह डर लगा रहता था कि अगर हम अपने मौजूदा काम से हटा दिए गए तो हमारी रोज़ी बन्द हो जाएगी।

हम अपने काम से सन्तुष्ट थे और यही कारण है कि हम थोड़ी मज़दूरी और ज्यादा काम के मसले पर बहुत कम ग़ौर किया करते थे। उसकी ज़रूरत भी क्या है? इसलिए कि यह काम पढ़े-लिखे आदमियों का है और हम बिल्कुल अनपढ़ और जाहिल थे। दरअसल बात यह है कि हमारी दुनिया बिल्कुल अलग-थलग थी जिसकी सरहदें पत्थर तोड़ने या उन्हें हटाने, बारह बजे रोटी खाने और फिर काम करने और उसके बाद अपने-अपने डेरों में सो जाने तक खत्म हो जाती थीं। हमें इन हदों से बाहर किसी चीज़ से कोई मतलब न था दूसरे शब्दों में अपना और अपने कुटुम्बियों का पेट पालने के धन्धे में हम बुरी तरह फँस कर रह गए थे कि उसके बाहर निकल कर हम किसी और चीज़ की इच्छा करना ही भूल गए थे।

हमारे काम पर सड़कों के महकमे की तरफ से एक निरीक्षक मुकर्रर था जो दिन का ज्यादातर हिस्सा सड़क के एक तरफ चारपाई बिछाकर बैठा रहता था। यह जात का पण्डित था। उच्च वर्ग का निशान सिंदूर के तिलक की सूरत में उसकी सफ़ेद पेशानी पर चमकता रहता था। हम अपने निरीक्षक को आदर-सत्कार की दृष्टि से देखते थे। पहले तो इसलिए कि वह ब्राह्मण था और दूसरे इसलिए कि हम उसके मातहत थे। चुनाचे इधर-उधर के दूसरे

कामों के अलावा हम बारी-बारी दिन में कई बार उसके पीने के लिए हुक्का ताज़ा किया करते थे और आग बना कर उसकी चिल्में भरा करते थे।

पण्डित का काम सिर्फ यह था कि सुबह चारपाई पर अपने गेरुए रंग की कलफ लगी पगड़ी और रेशमी कोट उतार कर अपने गंजे सर पर हाथ फेरते हुए हमारी हाजिरी लगाए और फिर एक बड़े से रजिस्टर में कुछ दर्ज करने के बाद इधर-उधर टहलता रहे या हुक्का पीता रहे। वह अपने काम में बहुत कम दिलचस्पी लेता था। अलबत्ता जब कभी मुआयने के लिए किसी अफसर की मोटर उधर से गुज़रना होती थी तो वह अपनी चारपाई उठवा, हमारे पास खड़ा हो जाया करता था। उसकी इस चालाकी पर हम दिल ही दिल में बहुत हँसा करते थे।

एक रोज़ जबकि सुबह से हल्की-हल्की फुहार गिर रही थी और हम बारह बजे खाना खाने से निपट कर हमेशा की तरह अपने काम में व्यस्त थे कि हमें मोटर के हार्न ने चौंका दिया। लारियों की बनिस्बत हम मोटरों को देखने के बहुत इच्छुक थे। इसलिए कि उनमें हमारी भूखी नज़रों के देखने के लिए अजीब व गरीब चीज़ें नज़र आती थीं हम कमरें सीधी करके खड़े हो गए। इतने में मोड़ के पीछे से हरे रंग की एक छोटी मोटर दिखाई दी। जब यह हमारे करीब पहुँची ता हमने देखा कि उसकी बाडी बारिश के नन्हें-नन्हें कतरों के नीचे चमक रही है। बहुत आहिस्ता-आहिस्ता चल रही थी—शायद इसलिए कि पिछली सीट पर जो दो साहब बैठे हुए थे उनमें एक अपनी रानों पर ग्रामोफोन रखे बजा रहे थे। जब यह मोटर हमारे सामने आई तो रेकार्ड की आवाज़ सड़क के साथ वाली पहाड़ी के पत्थरों से टकरा कर वायुमण्डल में गूँजी। कोई गा रहा था।

न मैं किसी का ना कोई मेरा, छाया चारों ओर अन्धेरा

अब कुछ सूझत नाहीं मोहे, अब कुछ............

आवाज़ में बेहद दर्द था। एक क्षण के लिए मालूम हुआ कि हम शायद अन्धकार के समुद्र में डूब गए हैं। जब मोटर अपनी अधखुली खिड़कियों में से

उस गीत के दर्दनाक सुर बिखेरती हुई हमारी नज़रों से ओझल हो गई तो हम सबने एक आह भर कर अपना काम शुरू कर दिया।

शाम के क़रीब जब सूरज की सुर्ख और गर्म-टिकिया पिघले हुए ताँबे का रंग धारण करके एक काली पहाड़ी के पीछे छिप रही थी और उसकी बैजनी किरणें ऊँचे वृक्षों की चोटियों से खेल रही थीं। हरे रंग की वही मोटर उस तरफ से वापस आती दिखाई दी जिधर वह दोपहर को गई थी। जब हमने उसके हार्न की आवाज़ सुनी तो काम छोड़कर उसको देखने लगे। आहिस्ता-आहिस्ता चलती हुई वह हमारे आगे से गुज़र गई और फिर अचानक हम से आधी फरलाङ्ग के करीब के फासले पर खड़ी हो गई। वह बाजा जो उसमें बज रहा था, ख़ामोश हो गया।

थोड़ी देर के बाद पिछली सीट से एक नौजवान दरवाज़ा खोलकर बाहर निकला और अपनी पतलून को कमर पर से दुरुस्त करता हुआ हमारे पास से गुज़रा और आहिस्ता-आहिस्ता उस पुल की तरफ रवाना हो गया जो सामने नाले पर बँधा हुआ था। यह ख्याल करके कि वह नाले के पानी का दृश्य देखने के लिए गया है, जैसा कि आम तौर पर उधर से गुज़रने वाले मुसाफिर किया करते थे, हम अपने काम में व्यस्त हो गए।

अभी हमें अपना काम शुरू किए पाँच मिनट से ज़्यादा समय न गुज़रा होगा कि पुल की तरफ से ताली की आवाज़ बुलन्द हुई। हमने मुड़कर देखा-पतलून पोश नौजवान पुल पर से सड़क के साथ पत्थरों से चुनी हुई दीवार के पास खड़ा शायद मोटर में अपने साथियों का ध्यान आकर्षित कर रहा था। पत्थर की मुँडेर पर उस नौजवान से कुछ दूर एक लड़की बैठी हुई थी।

हममें से एक ने अपने बेलचे को बड़े ज़ोर से मोरी की गीली मिट्टी में गाड़ते हुए कहा, "यह रामदयी है।"

कालू ने जो उसके पास खड़ा था, मालूम किया, "कौन रामदयी ?"

"सन्नू चमार की लड़की और कौन ?" उसके स्वर में बेलचे के लोहे जैसी सख़्ती थी।

हम बाक़ी चार है रान थे कि इस बातचीत का मतलब क्या है। अगर वह लड़की जो मुँडेर पर बैठी है, सन्नू चमार की लड़की है तो कौनसी महत्व की बात है कि हमारा साथी इस क़दर तेज़ बोल रहा है। हम ग़ौर कर रहे थे कि फजल ने जो हम सबसे उम्र में बड़ा था और नमाज़ रोज़े का बहुत पाबन्द था, अपनी दाढ़ी को खुजलाते हुए बड़े ही दार्शनिक ढंग से कहा, "दुनिया में एक अंधेर-मचा है....खुदा मालूम लोगों को क्या हो गया है ?"

यह सुनकर हम बाक़ी तीन मामले से आगाह होकर सब कुछ समझ गए और इस एहसास ने हमारे दिलों में ग़म व गुस्से की एक अजीब व गरीब स्थिति पैदा करदी।

ताली की आवाज़ सुनकर मोटर की पिछली सीट से पतलूनपोश के साथी ने अपना सर बाहर निकाला और यह देखकर कि उसका दोस्त उसे बुला रहा है, दरवाज़ा खोलकर बाहर निकला और हमारे क़रीब से गुज़रता हुआ पुल की ओर चल दिया। हम बेवक़ूफ़ बकरियों की तरह उसे अपने दोस्त के पास जाते देखते रहे।

जब पतलूनपोश नौजवान का दोस्त उसके पास पहुँच गया तो वे दोनों लड़की की तरफ़ बढ़े और उससे बातें करना शुरू करदीं। यह देखकर कालू मन मसोस कर रह गया और क्रोधपूर्ण स्वर में बोला, "बदमाश......!"

.फ़ज़ल ने सर्द आह भरी और उदास स्वर में कहने लगा, "जब से यह सड़क बनी है और ऐसे बाबुओं की आमदो-रफ़्त ज्यादा हो गई है, यहाँ के तमाम इलाकों में गंदगी फ़ैल गई। लोग कहते हैं कि सड़क बनने से बहुत आराम हो गया है। होगा, मगर इस किस्म की बेशर्मी के दृश्य पहले कभी देखने में न आते थे—खुदा बचाए।"

इस दौरान में पतलूनपोश के साथी ने लड़की को बाज़ू से पकड़ लिया और शायद उसको उठकर चलने को कहा, पर वह अपनी जगह पर बैठी रही। यह देखकर कालू से न रहा गया और उसने रामप्रसाद से कहा, "आओ ये लोग तो अब दस्तदराज़ी कर रहे हैं।"

कालू यह कह कर अकेला ही उस ओर बढ़ने को था कि हमने उसे रोक दिया और मशविरा दिया कि तमाम मामला पण्डित को सुना दिया जाय जो अपनी चारपाई पर सो रहा है और फिर जो वह कहे उस पर अमल किया जाय। इस सुझाव को मुनासिब समझकर हम सब पण्डित के पास गए और उसे जगाकर सारी घटना सुनादी। उसने हमारी बातचीत को बड़ी बेपरवाही से सुना जैसे कोई बात ही नहीं और उन दो नौजवानों की तरफ देखकर जो अब रामदयी को न मालूम किस तरीके से मना कर अपने साथ लारहे थे कहा, "जाओ तुम अपना काम करो मैं उनसे खुद दरियाफ्त कर लूँगा।"

यह जवाब सुनकर हम बेचारगी की हालत में अपने काम पर आ गए। लेकिन हम सब की निगाहें रामदयी और उन दो नौजवानों पर जमी हुई थीं जो अब पुल तै करके पण्डित की चारपाई के क़रीब पहुँच रहे थे। लड़के आगे थे और रामदयी थकी हुई घोड़ी की तरह उनके पीछे चल रही थी। जब वे सब पण्डित के आगे से गुज़रने लगे तो वह चारपाई पर से उठा, दो-तीन मिनट तक उनसे बातें करने के बाद वह भी उनके साथ हो लिया।

जब पण्डित, रामदयी और वे दो नौजवान हमारे पास से गुज़रे तो हमने देखा कि नौजवानों के चेहरों पर हैवानियत झलक रही है और पण्डित बड़े अदब से उनके साथ-साथ चल रहा है। रामदयी की निगाहें झुकी हुई थीं।

मोटर के पास पहुँचकर पण्डित ने आगे बढ़कर उसका दरवाज़ा खोला। पहले पतलूनपोश, फिर रामदयी और उसके बाद दूसरा नौजवान मोटर में दाख़िल हो गए। हमारे देखते-देखते मोटर नज़रों से ओझल हो गई और हम आँखें झपकाते रह गए।

"शैतान ! मरदूद !!" कालू ने बड़ी बेचैनी से ये दो शब्द कहे।

इतने में पण्डित आगया और हमको बेचैन व घबराया-सा देखकर एक कृत्रिम आवाज़ में कहने लगा, "मैंने उनसे मालूम किया है: कोई बात नहीं। वे लड़की को ज़रा मोटर की सैर कराना चाहते थे। इन्सपैक्टर साहब के मेहमान हैं, और आदमी डाक बँगले में ठहरे हुए हैं। थोड़ी दूर ले जाकर उसे छोड़ देंगे। अमीर आदमी हैं, उनके मनोरंजन इसी किस्म के होते हैं।"

यह कह कर पण्डित चला गया।

हम देर तक न जाने किन गहराइयों में डूबे रहे कि अचानक फज़ल की अवाज़ ने हमें चौंका दिया। दो मरतबा ज़ोर से थूक कर उसने अपने हाथों को गीला किया और बेलचे को पत्थरों में गाड़ते हुए कहा :

"अगर अमीर आदमियों के यही मनोरंजन हैं तो हम गरीबों की बहू-बेटियों का अल्लाह बेली है।"

किताब का खुलासा

सर्दियों में अनवर छत पर पतंग उड़ा रहा था। उसका छोटा भानजा उसके साथ था। क्योंकि अनवर के पिता कहीं बाहर गए हुए थे, इसलिए वह पूरी आज़ादी और बड़ी बे परवाई से पतंगबाज़ी में निमग्न था। पेच ढील का था। अनवर बड़े ज़ोरों से अपनी माँग पाटी पतंग को डोर पिला रहा था। उसके भानजे ने, जिसका छोटा सा दिल धक-धक कर रहा था, और जिसकी आँखें आसमान पर जमी हुई थीं, अनवर से कहा—"मामूजान खेंच के पटिया काट लीजिए।" मगर वह धड़ाधड़ डोर पिलाता रहा।

नीचे खुले हुए कोठे पर अनवर की बहन सहेलियों के साथ धूप सेंक रही थी। सब कशीदाकारी में व्यस्त थीं। साथ-साथ बातें भी करती जाती थीं। अनवर की बहन शमीम अनवर से दो वर्ष बड़ी थी। कशीदाकारी और सीने-पिरोने के काम में निपुण। इसीलिए गली की अक्सर लड़कियाँ उसके पास आती थीं और घण्टों बैठी काम सीखती रहती थीं। एक हिन्दू लड़की, जिसका नाम बिमला था, बहुत दूर से आती थी। उसका घर लगभग दो मील दूर था लेकिन वह प्रतिदिन नियमित रूप-से आती और बड़ी लगन से कशीदाकारी के नए-नए डिज़ाइन सीखा करती थी।

बिमला का पिता स्कूल-मास्टर था। बिमला अभी छोटी बच्ची ही थी

कि उसकी माँ का देहान्त हो गया। बिमला का बाप लाला हरीचरण चाहता तो बड़ी आसानी से दूसरी शादी कर सकता था मगर उसे बिमला का ख़याल था। अतएव वह विधुर ही रहा। और बड़े प्यार-मुहब्बत से अपनी बच्ची को पाल-पोस कर बड़ा किया। अब बिमला सोलह वर्ष की थी। साँवले रंग की दुबली-पतली लड़की। ख़ामोश-ख़ामोश, बहुत कम बातें करने वाली, बड़ी शर्मीली। सुबह दस बजे आती; आपा शमीम को प्रणाम करती और अपना थैला खोलकर काम में लग जाती।

अनवर अठारह बरस का था। उसकी उन सब लड़कियों में से केवल सईदा से हल्की-सी दिलचस्पी थी। लेकिन यह हल्की-सी दिलचस्पी कोई और रूप धारण नहीं कर सकती थी। इसलिए कि उसका बहन उसको लड़कियों में बैठने की इजाजत नहीं देती थी। अगर कभी वह एक क्षण के लिए उनके पास आ बैठता तो आपा शमीम फ़ौरन ही उसको हुक्म देतीं—"अनवर, उठो, तुम्हारा यहाँ कोई काम नहीं।" और अनवर को फौरन इस आज्ञा का पालन करना पड़ता था।

बिमला अलबत्ता कभी-कभी अनवर को बुलाती थी, नाविल लेने के लिए। उसने शमीम से कहा था—"घर में मेरा जी नहीं लगता। पिताजी बाहर शतरंज खेलने चले जाते हैं और मैं अकेली पड़ी रहती हूँ। अनवर भाई से कहिए मुझे नाविल दे दिया करें पढ़ने के लिए।"

पहले तो बिमला शमीम के द्वारा नाविल लेती रही। फिर कुछ दिनों के बाद उसने अनवर से खुद माँगने शुरू कर दिए। अनवर को बिमला बड़ी विचित्र लड़की लगती थी यानी ऐसी जो बड़े ग़ौर से देखने पर दिखाई देती थी। लड़कियों के जमघट में वह बिल्कुल ग़ायब हो जाती थी। बैठक में जब वह अनवर से नया नाविल माँगने आती तो उसको उसके आने का उस समय पता चलता, जब वह उसके पास आकर धीमी आवाज़ में कहती—"अनवर साहब—यह लीजिए, अपना नाविल—शुक्रिया।"

अनवर उसकी तरफ़ देखता। उसके दिमाग़ में एक विचित्र-सी उपमा फुदक कर उठती—"यह लड़की तो ऐसी है जैसे किताब का खुलासा।"

बिमला और कोई बात न करती। पुराना नाविल वापस करके-नया नाविल लेती और नमस्ते करके चली जाती। अनवर उसके सम्बन्ध में कुछ क्षण सोचता। इसके बाद वह उसके दिमाग़ से निकल जाती। लेकिन अनवर ने एक बात अवश्य अनुभव की थी कि बिमला ने एक-दो बार उससे कुछ कहना चाहा था मगर वह कहते-कहते रुक गई थी। अनवर सोचता—"क्या कहना चाहती थी मुझसे ?" इसका जवाब उसका दिमाग़ यूँ देता—"कुछ भी नहीं—मुझसे वह क्या कहना चाहती होगी भला ?"

अनवर छत पर पतंग उड़ा रहा था। पेच ढील का था खूब डोर पिला रहा था। यकायक उसकी बहन शमीम की घबराई हुई आवाज़ आई--"अनवर —अनवर—अब्बाजी आगए !"

अनवर को और कुछ न सूझी। हाथ से डोर तोड़ी और छत से नीचे कूद पड़ा। "वह-काटा-वह काटा" की आवाज़ें उठीं। अनवर का घुटना बड़े ज़ोर से छिल गया था। उसको एक तो इसका दुख था दूसरे उसके प्रतिस्पर्द्धी विजय के नारे लगा रहे थे। वह लँगड़ाता-लँगड़ता चारपाई पर बैठ गया। घुटने को देखा तो उसमें से ख़ून वह रहा था। बिमला 'सामने बैठी थी। उसने अपना दुपट्टा उतारा, किनारे पर से थोड़ा-सा फाड़ा और पट्टी बना कर अनवर के घुटने पर बाँध दिया। अनवर इस समय अपने पतंग के बारे में सोच रहा था। उसको विश्वास था कि मैदान उसके हाथ रहेगा। लेकिन उसके बाप के बे-वक़्त आने ने उसे मजबूर कर दिया कि वह अपने हाथों से इतने बढ़े हुए पतंग का ख़ात्मा कर दे। दुश्मनों के नारे अभी तक गूँज रहे थे। उसने क्रोध भरे स्वर में अपनी बहन से कहा—"अब्बा जी को भी इसी वक़्त आना था।"

शमीम मुस्कराई—"वह कब आए हैं !"

अनवर चिल्लाया—"क्या कहा ?"

शमीम हँसी—"मैं ने तुमसे मज़ाक़ किया था।"

अनवर बरस पड़ा—"मेरा बेड़ा डुबो कर आप हँस रही हैं, अच्छा मज़ाक है। एक मेरा इतना बढ़ा हुआ पतंग नष्ट हुआ, लोगों की आवाज़ें सुनी, और घुटना अलग ज़ख्मी हुआ।"

यह कहकर अनवर ने अपने घुटने की तरफ़ देखा। सफ़ेद मलमल की पट्टी बँधी थी। अब उसको यह याद आया कि यह पट्टी बिमला ने अपना दुपट्टा फाड़कर उसके घुटने पर बाँधी थी। उसने धन्यवाद देने वाली दृष्टि से बिमला को देखा और उसको ऐसा अनुभव हुआ कि वह उसके ज़ख्म का दर्द अनुभव कर रही है।

बिमला ने शमीम से कहा—"आपा आपने बहुत ज़ुल्म किया। ज़्यादा चोट आजाती तो········" वह कुछ और कहते-कहते रुक गई और कशीदा काढ़ने में व्यस्त हो गई।

अनवर की दृष्टि बिमला से हट कर सईदा पर पड़ी। सफ़ेद स्वेटर में वह उसे बहुत भली मालूम हुई। अनवर उससे बोला—"सईदा तुम ही बताओ, यह मज़ाक़ अच्छा था ? हँसी में फँसी हो जाती तो ?"

शमीम ने उसे डाँट दिया—"जाओ अनवर तुम्हारा यहाँ कोई काम नहीं।"

अनवर ने एक दृष्टि सईदा पर डाली। बहुत अच्छा कहकर वह उठा और लँगड़ाता-लँगड़ाता फिर छत पर चढ़ गया। थोड़ी देर पतंग उड़ाए। ग़ुस्से में खेंचकर हाथ मार कर लगभग एक दर्जन पतंग काटे और नीचे उतर आया। घुटने में दर्द था। बैठक में सोफ़े पर लेट गया और ऊपर कम्बल डाल लिया। थोड़ी देर अपनी विजय के सम्बन्ध में सोचता रहा फिर सो गया।

लगभग एक घण्टे के बाद उसे आवाज़ सुनाई दी जैसे उसे कोई बुला रहा है। उसने आँखें खोलीं। देखा सामने बिमला खड़ी थी मुर्झाई हुई, कुछ सिमटी हुई-सी। अनवर ने लेटे-लेटे पूछा—"क्या है बिमला ?"

"जी, मैं आपसे कुछ—" बिमला रुक गई। "जी मैं आपसे कोई—नई किताब—कोई नई किताब दीजिए।"

अनवर ने कहा—"मेरे घुटनों में ज़ोर का दर्द है। वह जो सामने अल्मारी है उसे खोल कर जो किताब तुम्हें पसन्द हो ले लो।"

बिमला कुछ क्षण खड़ी रही। फिर चौंकी—"जी ?"

अनवर ने उसे ग़ौर से देखा। उस दुपट्टे के पीछे, जिसमें से बिमला ने पट्टी फाड़ी थी, बड़ी नारियल-सी छातियाँ धड़क रही थीं। अनवर को उस पर दया आ गई। उसकी शक्ल व सूरत, उसका आकार-प्रकार ही कुछ ऐसा था कि उसे देखकर अनवर के दिल और दिमाग़ में हमेशा दया की भावना उत्पन्न हो जाती थी। उसको और तो कुछ न सूझा, बोला—"पट्टी बाँधने का शुक्रिया!"

बिमला ने कुछ कहे बग़ैर अलमारी का रुख़ किया और उसे खोलकर किताबें देखने लगी। अनवर के दिमाग़ में वही उपमा फिर फुदकी—"यह किताब नहीं, किताब का खुलासा है—बहुत ही रद्दी कागज़ों पर छपा हुआ।"

बिमला ने एक बार अनवर को कनखियों से देखा। मगर जब उसे अपनी तरफ़ देखते हुए पाया तो उसकी तरफ़ पीठ कर ली। कुछ देर किताबें देखीं। एक पसन्द की। अलमारी को बन्द किया, अनवर के पास आई और "मैं यह ले चली हूँ!" कह कर चली गई।

अनवर ने बिमला के बारे में सोचने की कोशिश की मगर उसको सईदा के सफ़ेद स्वेटर का ख़याल आता रहा। स्वेटर पहिनने से शरीर की आकृति कितनी स्पष्ट हो जाती है। सईदा का सीना.......और इस बिमला की मरियल छातियाँ। जैसे उनका दूध अलग करके सिर्फ़ पानी रहने दिया गया हो......सईदा के घुँघराले बाल .....कम्बख़्त ने अपने माथे के ज़ख़्म के निशान को छुपाने का क्या ढंग निकाला है। —बल खाती हुई एक लट छोड़ देती है उस पर ......और बिमला—न जाने क्या तकलीफ़ है उसे.......आज भी कुछ कहते कहते रुक गई थी........मगर मुझ से क्या कहना चाहती है? शायद उसका ढंग ही कुछ ऐसा हो—हमेशा किताब इस तरह माँगती है जैसे कोई मदद माँग रही है......कोई सहारा ढूँढ़ रही है। ......सईदा माशा अल्लाह, आज सफ़ेद स्वेटर में क़यामत ढा रही थी......यह क़यामत ढाना क्या बकवास है...... क़यामत तो हर चीज़ का अन्त है और सईदा तो अभी मेरी ज़िन्दगी में शुरू हुई है। बिमला! बिमला .....भई मेरी समझ में नहीं आई यह लड़की—

बाप तो उसको बहुत प्यार करता है। उसके लिए उसने दूसरी शादी न की। शायद उन लोगों को कोई आर्थिक तकलीफ़ हो……लेकिन घर तो खासा अच्छा था। एक ही पलङ्ग था लेकिन बड़ा शानदार। सोफ़ा सैट भी बुरा नहीं था और जो खाना मैंने खाया था, उसमें कोई बुराई नहीं थी……सईदा का घर तो बड़ा अमीराना है। बड़े रईस की लड़की है—इस रियासत की ऐसी-तैसी—यही तो बहुत बड़ी मुसीबत है वरना……लेकिन छोड़ो जी—सईदा जवान है। कल कहीं ब्याह दी जायगी,—मुझे खुदा मालूम अभी कितने बरस लगेंगे,पूरी शिक्षा प्राप्त करने में। बी० ए० के बाद विलायत—मेम ?—देखेंगे ! ……लेकिन सफ़ेद स्वेटर खूब था !

अनवर के दिमाग़ में इसी प्रकार के उल्टे-सीधे विचार आते रहे। उसके बाद वह दूसरे कामों में लग गया।

दूसरे दिन बिमला न आई मगर अनवर ने उसकी गैर हाज़िरी को कुछ ज़्यादा अनुभव न किया। बस सिर्फ़ इतना कि वह लड़कियों के झुरमुट में नहीं है—शायद हो ? लेकिन अगले दिन जब बिमला आई तो लड़कियों ने उससे पूछा—"बिमला तुम कल क्यों नहीं आईं ?"

बिमला और अधिक मुर्झाई हुई थी—और अधिक संक्षिप्त हो गई थी। जैसे किसी ने रन्दा फेर कर उसको हर तरफ़ से छोटा और पतला कर दिया हो। उसका साँवला रंग एक विचित्र प्रकार का करुण पीलापन धारण कर गया था। लड़कियों का सवाल सुनकर उसने अनवर की तरफ़ देखा, जो गमलों में पानी दे रहा था और थैला खोलकर चारपाई पर बैठते हुए कहा—"कल पिता जी…कल पिता जी बीमार थे।"

शमीम ने दुःख प्रकट किया और पूछा—"क्या तकलीफ़ थी उन्हें ?"

बिमला ने अनवर की तरफ़ देखा। चूँकि वह उसे देख रहा था इस-लिए निगाहें दूसरी तरफ़ करलीं और कहा—"तकलीफ़ !—मालूम नहीं क्या तकलीफ़ थी।" फिर थैले में हाथ डालकर अपनी चीज़ें निकालीं—"मैं तो नहीं समझती।"

अनवर ने लोटा मुण्डेर पर रखा और विमला से बोला—"किसी डाक्टर से मशवरा लिया होता।"

विमला ने अनवर को बड़ी तेज़ निगाहों से देखा—"उनका रोग डाक्टरों की समझ में नहीं आएगा।"

अनवर को ऐसा अनुभव हुआ कि बिमला ने उससे यह कहा है कि उनका रोग तुम समझ सकते हो।

वह कुछ कहने ही वाला था कि सईदा की आवाज़ उसके कानों में आई। वह बिमला से कह रही थी—"खालूजान के पास जायँ। वह बहुत बड़े डाक्टर हैं, यूँ चुटकियों में सब-कुछ बता देंगे।"

सईदा ने चुटकी बजाई थी मगर बजी नहीं थी। अनवर ने उससे कहा—"सईदा तुम से चुटकी कभी नहीं बजेगी, व्यर्थ कोशिश न किया करो!"

सईदा शरमा गई। आज उसका स्वेटर काला था। अनवर ने सोचा, "कम्बख़्त पर हर रंग खिलता है, लेकिन कितने स्वेटर हैं इसके पास?·······हर वक्त कोई न कोई बुनती ही रहती है। स्वेटरों और पुलओवरों का ख़फ़्त है इसे।·······इससे मेरी शादी हो जाय तो मज़े आ जायँ·····पुलओवर ही पुल ओवर·······दोस्त यार खूब जलें·······लेकिन यह बिमला क्यों आज राख का ढेर-सी लगती है·······सईदा शरमा गई थी······यह शरमाना मुझे अच्छा नहीं लगता·······चुटकी बजाना सीख ले मुझ से·······मुझ से नहीं तो किसी और से·······लेकिन बेहतरीन चुटकी बजाने वाला हो।"

यह सब-कुछ उसने एक सैकिण्ड में सोचा। सईदा ने कोई जवाब नहीं दिया। अनवर ने उससे कहा—"चुटकी यूँ बजाया करते हैं!" और उसने बड़े ज़ोर से चुटकी बजाई। अकस्मात् उसकी दृष्टि बिमला पर पड़ी। उसके चेहरे पर निराशा की मुर्दनी छाई हुई थी। अनवर के दिल में सहानुभूति के भाव उभर आए—"बिमला तुम पिता जी से कहो कि वह किसी अच्छे डाक्टर से अवश्य मशवरा करें। उनके सिवा तुम्हारा और कौन है?"

यह सुन कर बिमला की आँखों में आँसू आ गए। ज़ोर से दोनों ओंठ भींचे और बहुत ज़ब्त करने के बावजूद ज़ारो क़तार रोती बरसाती की तरफ़

दौड़ गई। सारी लड़कियाँ काम छोड़ कर उसकी तरफ़ भागीं। अनवर ने बरसाती में जाना उचित न समझा वह नीचे बैठक में चला गया। बिमला के बारे में उसने सोचने की कोशिश की मगर उसके दिमाग़ ने उसका साथ न दिया। वह बिमला के दुःख-दर्द का सही विश्लेषण न कर सका। वह केवल इतना सोच सका कि उसको सिर्फ इस बात का ग़म है कि उसकी माँ ज़िन्दा नहीं।

शाम को अनवर ने अपनी बहन से बिमला के बारे में पूछा तो उसने कहा—"मालूम नहीं क्या दुख है बिचारी को—अपने बाप का बार-बार ज़िक्र करती थी कि उनको न जाने क्या रोग है और बस !"

सईदा पास खड़ी थी, काला स्वेटर पहिने। उसकी जीती-जागती छातियाँ आबनूसी गोलों के रूप में उसके सफ़ेद नैनून के दुपट्टे के पीछे बड़ा दिलकश विरोध पैदा कर रही थीं। ऐसा लगता था जैसे काले बट्टों पर उनकी चमक छिपाने के लिए किसी मकड़ी ने महीन-सा जाला बुन दिया है। अनवर बिमला का दुःख भूल गया और सईदा से बातें करने लगा। सईदा ने उससे कोई दिलचस्पी नहीं ली और आपा शमीम को सलाम कर के चली गई।

अनवर बैठक में कालेज का काम करने बैठा तो उसे बिमला का ख़याल आया—"कैसी लड़की है ?—कुछ समझ में नहीं आता—मेरे पट्टी बाँधी, अपना दुपट्टा फाड़ कर।"

आज मैंने कहा—पिता जी के सिवा तुम्हारा कौन है तो उसने रोना शुरू कर दिया।·········और जब मैं गमलों में पानी दे रहा था तो बिमला की इस बात से कि उनका रोग डाक्टरों की समझ में नहीं आएगा, उसने क्यों यह महसूस किया था कि बिमला ने इसके बजाय उससे यह कहा है—उनका रोग तुम समझ सकते हो।·········लेकिन मैं कैसे समझ सकता हूँ—क्या समझ सकता हूँ—वह मुझे ठीक तरह से समझाती क्यों नहीं······ यानी अगर वह समझाना ही चाहती है·········मेरी समझ में कुछ भी नहीं आता··········जब उसने मेरी तरफ़ देखा था तो उसकी निगाहों में इतनी तेजी क्यों थी··········अब सोचता हूँ तो अनुभव होता है जैसे मेरी बुद्धिमानी और

योग्यता को धिक्कार रही थी.........लेकिन क्यों ? ....हटाओ जी... सईदा.........हाँ वह काला स्वेटर .... सफ़ेद नैनू का हवाई दुपट्टा और.... लेकिन मुझे ऐसा नहीं सोचना चाहिए .....जाने किसका माल है.......ख़ैर कुछ भी हो.........लड़की सुन्दर है.........मगर उस पर सुन्दरता समाप्त तो नहीं हो गई।"

अगले दिन बिमला न आई। अनवर के घर में सब चिन्तित थे। दुआयें माँग रहे थे कि ख़ुदा उसके बाप को उसके सर पर सलामत रखे। शमीम को बिमला बहुत पसन्द थी। इसलिए कि वह ख़ामोशी-पसन्द और बुद्धिमान थी। बारीक से बारीक बात फ़ौरन समझ जाती थी। अतएव वह सारा दिन थोड़ी-थोड़ी देर के बाद उसे याद करती रही। अनवर की माँ ने तो अनवर से कहा कि वह साइकिल पर जाए और बिमला के बाप की ख़ैरियत मालूम करके आए।

अनवर गया। बिमला सागवान के चौड़े पलंग पर औंधी लेटी थी। साँस का उतार-चढ़ाव तेज़ था। अनवर ने धीरे-से पुकारा तो कोई प्रतिक्रिया न हुई। फिर ज़रा ऊँची आवाज़ में कहा—"बिमला !" तो वह चौंकी। करवट बदल कर उसने अनवर को देखा। अनवर ने नमस्ते की। बिमला ने हाथ जोड़ कर उसका जवाब दिया।

अनवर ने देखा कि बिमला की आँखें मैली थीं। जैसे वह रोती रही थी और उसने अपने आँसू नहीं पोंछे थे।

पलंग पर से उठ कर उसने अनवर को कुर्सी पेश की और स्वयं फ़र्श पर बिछी हुई दरी पर बैठ गई। अनवर ने कुछ देर ख़ामोश रहने के बाद कहा—"वहाँ सबको बहुत फ़िक्र थी—पिता जी कहाँ हैं ?"

बिमला के मुरझाए हुए होंठ खुले और उसने खोखली आवाज़ में केवल इतना कहा—"पता..........!"

अनवर ने पूछा—"तबियत कैसी है उनकी ?"

"अच्छी है !" बिमला की आवाज उसकी आवाज़ नहीं थी।

लगभग दस महीने बाद अखबारों में यह सनसनी फैलाने वाली खबर प्रकाशित हुई कि बड़ी सड़क की बदरौ में एक नौज़ायदा बच्चा मरा हुआ पाया गया। जाँच-पड़ताल की गई तो पता चला कि बच्चा लाला हरीचरण स्कूल मास्टर की लड़की बिमला का था और बच्चे का बाप खुद लाला हरीचरण था

सब पर सकता छा गया।

अनवर ने सोचा—"तो सारी किताब का खुलासा यह था।"

ख़ुदा की क़सम

उधर से मुसलमान और इधर से हिन्दू अभी तक आ-जा रहे थे। कैम्पों के कैंप भरे पड़े थे जिनमें कहावत के तौर पर तिल धरने के लिए वाक़ई कोई जगह नहीं थी। लेकिन इसके बावजूद लोग उनमें ठूँसे जा रहे थे। ग़ल्ला नाकाफ़ी है, स्वास्थ्य-सुरक्षा का कोई इन्तज़ाम नहीं, बीमारियाँ फैल रही हैं, इसका होश किस को था। एक आपाधापी का आलम था।

सन् ४८ का आरम्भ था। शायद मार्च का महीना! इधर और उधर दोनों तरफ स्वयं-सेवकों के ज़रिए 'भगाई हुई' औरतों और बच्चों की आयात का शुभ कार्य आरम्भ हो चुका था। सैकड़ों मर्द, औरतें, लड़के और लड़कियाँ इस भलाई के काम में हिस्सा ले रही थीं। मैं जब उन्हें इसमें सक्रिय देखता तो मुझे बड़ी अचरजमयी प्रसन्नता होती यानी ख़ुद इन्सान इन्सान की बुराइयों के आसार मिटाने की कोशिश में मसरूफ़ था। जो इस्मतें लुट चुकी थीं उनको और लूट-खसोट से बचाना चाहता था—किसलिए?

इसलिए कि उसका दामन अधिक धब्बों और दाग़ों से न भर जाय? इसलिए कि वह जल्दी-जल्दी अपनी खून से लिथड़ी हुई उँगलियाँ चाट ले और अपने हम जिन्सों के साथ दस्तरख़्वान पर बैठ कर रोटी खाए? इसलिए कि वह इन्सानियत का सूई-धागा लेकर, जब तक दूसरे आँखें बन्द किए हैं, इस्मतों के चाक रफ़ू कर दे?

कुछ समझ में नहीं आता था, लेकिन इन रज़ाकारों का प्रयास फिर भी प्रशंसनीय मालूम होता था।

उन्हें सैकड़ों दुश्वारियों का सामना करना पड़ता था। हज़ारों बखेड़े थे जो उन्हें उठाने पड़ते थे क्योंकि जिन्होंने औरतें और लड़कियाँ उड़ाई थीं पारे की तरह थे। आज इधर, कल उधर! अभी इस मुहल्ले में, अभी उस मुहल्ले में और फिर आस-पास के आदमी भी उनकी मदद नहीं करते थे।

अजीब-अजीब दास्तानें सुनने में आती थीं—एक लियाज़ाँ अफसर ने मुझे बताया कि सहारनपुर में दो लड़कियों ने अपने माँ-बाप के पास जाने से इन्कार कर दिया। दूसरे ने बताया कि जब जालन्धर में ज़बरदस्ती हमने एक लड़की को निकाला तो क़ाबिज़ के सारे खान्दान ने उसे यों अलविदा कही जैसे वह उनकी बहू है और किसी दूर दराज़ सफर पर जा रही है। कई लड़कियों ने माँ-बाप के डर से रास्ते ही में आत्मा-हत्या करली। कुछ ऐसी थीं जो उन सदमों की ताब न लाकर कमज़ोर हो चुकी थीं। कुछ ऐसी भी थीं जिन्हें शराब की लत पड़ चुकी थी। उन्हें प्यास लगती तो पानी के बजाय शराब माँगतीं और नंगी-नंगी गालियाँ बकतीं।

मैं इन बरामद की हुई लड़कियों और औरतों के बारे में सोचता तो मेरे ज़हन में सिर्फ फूले हुए पेट उभरते। इन पेटों का क्या होगा? इनमें जो कुछ भरा है उसका मालिक कौन है—पाकिस्तान या हिन्दुस्तान? और वह नौ महीने की नाज़ बरदारी—इसका मेहनताना पाकिस्तान अदा करेगा या हिन्दुस्तान?—क्या ये सब ज़ालिम प्रकृति या कुदरत के बही खाते में दर्ज होगा? लेकिन क्या उसमें कोई सफा खाली रह गया है?

बरामद की हुई औरतें आ रही थीं, बरामदशुदा औरतें जा रही थीं।

मैं सोचता था कि ये औरतें 'भगाई-हुई' क्यों कहलाई जाती थीं? उन्हें भगाया कब गया है? भगा ले जाना तो एक बड़ा रोमाँटिक काम है, जिसमें मर्द और औरतें दोनों शरीक होते हैं। यह तो एक ऐसी खाई है जिसे फाँदने से पहले दोनों रूहों के सारे तार झनझना उठते हैं। लेकिन यह अग़वा कैसा है कि एक निहत्थी को पकड़ कर कोठरी में कैद कर लिया?

लेकिन वह ज़माना ऐसा था कि तर्क-वितर्क और दलीलें व फ़लसफ़ा बेकार चीज़ें थीं। उन दिनों जिस तरह लोग गर्मियों में भी दरवाज़े और खिड़कियाँ बन्द करके सोते थे, उसी तरह मैंने भी अपने दिल व दिमाग़ की सब खिड़कियाँ-दरवाजे बन्द कर दिए थे हालाँकि उन्हें खुला रखने की ज़्यादा ज़रूरत उसी वक्त थी, पर मैं क्या करता मुझे कुछ सूझता ही नहीं था !

बरामद की हुई औरतें आ रही थीं। बरामदशुदा औरतें जा रही थीं।

यह बरामद और दरामद जारी थी तमाम व्यवसायिक विशेषताओं के साथ।

और पत्रकार, कहानी-लेखक और कवि अपनी क़लम उठाए शिकार में व्यस्त थे। लेकिन कहानियों और कविताओं का एक सैलाब था जो उमड़ा चला आ रहा था। क़लमों के क़दम उखड़-उखड़ जाते थे। जितने ही शिकारी थे सब बौखला गए थे।

एक लियाज़ाँ अफ़सर मुझसे मिला, कहने लगा, "तुम क्यों गुमसुम रहते हो ?"

मैंने कोई जवाब न दिया।

उसने मुझे एक दास्तान सुनाई :

"भगाई हुई औरतों की तलाश में हम मारे-मारे फिरते हैं—एक शहर से दूसरे शहर। एक गाँव से दूसरे गाँव, फिर तीसरे गाँव, फिर चौथे। गली गली, मुहल्ले मुहल्ले....कूचे, कूचे—बड़ी मुश्किलों से मक्सूद गौहर हाथ आता है।"

मैंने दिल में कहा, "कैसे गौहर....अनछिदे गौहर या छिदे हुए ?"

"तुम्हें मालूम नहीं हमें कितनी दिक्कतों का सामना करना पड़ता है ? लेकिन मैं तुम्हें एक बात बताने वाला था....हम सरहद के उस पार सैकड़ों फेरे कर चुके हैं ! अजब बात है कि मैंने हर फेरे में एक बुढ़िया को देखा—एक मुसलमान बुढ़िया को—अधेड़ उम्र की थी। पहली मरतबा तो मैंने उसे जालन्धर की बस्तियों में देखा—परेशान हाल, चला हुआ दिमाग़, वीरान-वीरान

आँखें, गर्द व ग़ुबार से अटे हुए बाल, फटे हुए कपड़े, उसे तन का होश था न मन का। लेकिन उसकी निगाहों से यह साफ़ ज़ाहिर था कि किसी को ढूँढ रही है।

"मुझे बहन ने बताया कि यह औरत सदमे की वजह से पागल हो गई है, पटियाला की रहने वाली है। इसकी इकलौती लड़की थी जो इसे नहीं मिलती। हमने बहुत जतन किये हैं उसे ढूँढने के लिए मगर नाकाम रहे हैं। शायद बलवों में मारी गई मगर यह बुढ़िया नहीं मानती।

"दूसरी बार मैंने उस पगली को सहारनपुर के लारियों के अड्डे पर देखा। उसकी हालत पहले से कहीं ज़्यादा अबतर व ख़स्ता थी। उसके होठों पर मोटी-मोटी पपड़ियाँ जमीं थीं। बाल साधुओं के-से बने थे। मैंने उससे बात-चीत की और चाहा कि वह अपनी अंधी तलाश छोड़ दे। चुनांचे मैंने इस ग़रज़ से बहुत संगदिल बनकर उससे कहा, "माई तेरी लड़की क़त्ल कर दी गई थी।"

पगली ने मेरी तरफ़ देखा "क़त्ल ? नहीं।" उसके लहजे में फौलादी "यक़ीन पैदा हो गया", 'उसे कोई क़त्ल नहीं कर सकता। मेरी बेटी को कोई क़त्ल नहीं कर सकता।"

"और वह चली गई अपनी अन्धी तलाश में।"

"मैंने सोचा—एक तलाश और फिर अन्धी ? लेकिन पगली को क्यों इतना यक़ीन था कि उसकी बेटी पर कोई कृपाण नहीं उठा सकता ? कोई तेज़ धार या कुन्द छुरा उसकी गर्दन की तरफ़ नहीं बढ़ सकता ? क्या वह अमर थी ? या उसकी ममता अमर थी ? ममता तो ख़ैर अमर होती है, फिर क्या वह अपनी ममता ढूँढ रही थी ? क्या उसने उसे कहीं खो दिया...... ?

"तीसरे फेरे पर मैंने उसे फिर देखा। अब वह बिल्कुल चीथड़ों में थी, क़रीब-क़रीब नंगी। मैंने उसे कपड़े दिये मगर उसने क़बूल न किये।

"मैंने उससे कहा, 'माई, मैं सच कहता हूँ तेरी लड़की पटियाले ही में क़त्ल कर दी गई थी।"

"उसने फिर उसी फौलादी यकीन के साथ कहा, 'तू झूठ कहता है।"

"मैंने उससे अपनी बात मनवाने की खातिर कहा, 'नहीं, मैं सच कहता हूँ। काफी रो-पीट लिया है तुमने चलो मेरे साथ", 'मैं तुम्हें पाकिस्तान ले चलूँगा'।

"उसने मेरी बात न सुनी और बड़बड़ाने लगी। बड़बड़ाते-बड़बड़ाते वह एकदम चौंकी। अब उसके लहजे में यक़ीन फौलाद से भी ज्यादा ठोस था, नहीं ! मेरी बेटी को कोई क़त्ल नहीं कर सकता !'

"मैंने पूछा, क्यों ?"

"बुढ़िया ने हौले-हौले कहा, वह ख़ूबसूरत है। इतनी ख़ूबसूरत है कि उसे कोई क़त्ल नहीं कर सकता—उसे तमांचा तक नहीं मार सकता।

"मैं सोचने लगा—क्या वाक़ई वह इतनी ख़ूबसूरत थी ? हर माँ की आँखों में उसकी औलाद चन्दे आफताब, चन्दे माहताब होती है। लेकिन हो सकता है वह लड़की दरअसल ख़ूबसूरत हो। मगर इस तूफ़ान में कौन-सी ख़ूबसूरती है, जो इन्सान के खुरदरे हाथों से बची है। हो सकता है पगली उस कच्चे विचार को धोखा दे रही हो। फ़रार के लाखों रास्ते हैं, दुख एक ऐसा चौक है जो अपने इर्द-गिर्द लाखों बल्कि करोड़ों सड़कों का जाल बुन देता है।

"बार्डर के उस पार कई फेरे हुए। हर बार मैंने उस पगली को देखा। अब वह हड्डियों का ढाँचा रह गई थी, बीनाई कमज़ोर हो चुकी थी। टटोल-टटोल कर चलती थी मगर उसकी तलाश जारी थी—बड़ी शद्दोमद से। उसका यक़ीन उसी तरह ठोस था कि उसकी बेटी ज़िन्दा है इसलिए कि उसे कोई मार नहीं सकता।

"बहन ने मुझ से कहा कि इस औरत से मग़ज़मारी फ़िज़ूल है। इसका दिमाग़ चल चुका है। बेहतर यही है कि तुम इसे पाकिस्तान ले जाओ और पागलखाने में दाख़िल करा दो।

"मैंने मुनासिब न समझा। मैं उसकी अन्धी तलाश, जो उसकी ज़िन्दगी का एक-मात्र सहारा थी, उससे नहीं छीनना चाहता था। मैं उसे एक विशाल पागलख़ाने से जिसमें वह मीलों की दूरी तय करके अपने पाँव के आबलों की प्यास बुझा सकती थी, उठाकर एक छोटी-सी चारदीवारी में क़ैद करना नहीं चाहता था।

"आखिरी बार मैंने उसे अमृतसर में देखा। उसकी बदहाली का यह आलम था कि मेरी आँखों में आँसू आ गए। मैंने फैसला कर लिया कि इसे पाकिस्तान ले जाऊँगा और पागलखाने में दाखिल करा दूँगा।

"वह फ़रीद के चौक में खड़ी अपनी नीम अंधी आँखों से इधर-उधर देख रही थी। चौक में काफी चहल-पहल थी। मैं बहन के साथ एक दूकान पर बैठा एक अग़वा की हुई लड़की के बारे में बातचीत कर रहा था जिसके बारे में इत्तला मिली थी कि वह बाज़ार सबूनियाँ में एक हिन्दू बनिए के घर में मौजूद है। यह बातचींत ख़त्म हुई तो मैं उठा कि उस पगली से झूठ-सच कहकर उसे पाकिस्तान जाने के लिए आमादा करूँ कि एक जोड़ा उधर से गुज़रा—औरत ने घूँघट काढ़ रखा था, छोटा-सा घूँघट। उसके साथ एक सिख नौजवान था—बड़ा छैल-छबीला, बड़ा तन्दुरुस्त और तीखे-तीखे नक़शों वाला।"

"जब ये दोनों उस पगली के पास से गुज़रे तो नौजवान एकदम ठिठक गया। उसने दो क़दम पीछे हटकर औरत का हाथ पकड़ लिया। कुछ अचानक तौर पर लड़की ने अपना छोटा-सा घूँघट उठाया। लट्ठे की धुली हुई सफेद चादर के चौखटे में मुझे एक ऐसा गुलाबी चेहरा नज़र आया, जिसका हुस्न बयान करने से मेरी ज़बान आजिज़ है।"

"मैं उनके बिल्कुल पास था। सिख नौजवान ने उस सौन्दर्य की देवी से उस पगली की ओर इशारा करते हुए सरगोशी में कहा, 'तुम्हारी माँ।'

"लड़की ने एक क्षण के लिए पगली की तरफ़ देखा और घूँघट छोड़ लिया और सिख नौजवान का बाज़ू पकड़ कर भिचे हुए स्वर में कहा, 'चलो!'

"और वे दोनों सड़क से ज़रा हट कर तेजी से आगे निकल गये। पगली चिल्लाई, 'भागभरी—भागभरी।"

"वह सख्त बेचैन थी। मैंने पास जाकर उससे पूछा 'क्या बात है माई ?"

"वह काँप रही थी, 'मैंने उसको देखा है!'

"मैंने पूछा, किसे ?"

"उसके माथे के नीचे दो गढ़ों में उसकी आँखों के बेनूर ढेले हरकत में आये, 'अपनी बेटी को—भागभरी को !'

"मैंने फिर उससे कहा, 'वह मर-खप चुकी है माई ।"

"उसने चीख कर कहा, 'तुम झूठ कहते हो !"

"मैंने इस मरतबा उसे पूरा यक़ीन दिलाने की खातिर कहा, 'मैं ख़ुदा की क़सम ख़ाकर कहता हूँ—वह मर चुकी है ।"

"यह सुनते ही वह पगली चौक में ढेर हो गई ।"

सिराज

नागपाड़ा पुलिस चौकी के उस तरफ जो छोटा-सा बाग़ है, उसके बिल्कुल सामने ईरानी के होटल के बाहर, बिजली के खम्भे के साथ ढोंडू खड़ा था। दिन ढले नियत समय पर वह यहाँ आ जाता और सुबह चार बजे तक अपने धन्धे में व्यस्त रहता।

मालूम नहीं उसका असली नाम क्या था, मगर सब उसे ढोण्डू कहते थे। एक प्रकार से तो उसका यह नाम बहुत उपयुक्त था क्योंकि उसका काम अपने ग्राहकों के लिए, उनकी इच्छा और रुचि के अनुसार हर नस्ल और हर रंग की लड़कियाँ ढूँढना था।

यह धन्धा वह लगभग दस वर्ष से कर रहा था। इस दौरान में हज़ारों लड़कियाँ उसके हाथों से गुज़र चुकी थीं। हर धर्म की, हर जाति की, हर स्वभाव की।

उसका अड्डा शुरू से यहीं रहा था। नागपाड़ा पुलिस चौकी के उस तरफ़, बाग़ के बिल्कुल सामने, ईरानी होटल के बाहर, बिजली के खम्भे के साथ। खम्भा उसका प्रतीक बन गया था। बल्कि मुझे तो वह ढोण्डू ही मालूम होता था। मैं जब कभी उधर से गुजरता और मेरी दृष्टि इस खम्भे पर पड़ती, जिस जगह-जगह चूने और कत्थे की उँगलियाँ पोंछी गई थीं, तो मुझे ऐसा लगता कि ढोण्डू खड़ा है और काले काण्डी और सिकेनी सुपारी वाला पान चबा रहा है।

यह खम्भा काफ़ी ऊँचा था। ढोण्डू भी लम्बे क़द का था। खम्भे के ऊपर बिजली के तारों का एक जाल-सा बिछा था। कोई तार दूर तक दौड़ता चला गया था और दूसरे खम्भे के तारों के उलझाव में गुम हो गया था। कोई तार किसी बिल्डिग में और कोई किसी दूकान में चला गया था। ऐस लगता था कि इस खम्भे की पहुँच दूर-दूर तक है। वह दूसरे खम्भों से मिल कर मानो सारे शहर पर छाया हुआ है।

इस खम्भे के साथ टेलिफोन विभाग ने एक बक्स लगा रखा था। जिसके द्वारा समय-असमय पर तारों की दुरुस्ती आदि की जाँच-पड़ताल की जाती थी। मैं अक्सर सोचता था कि ढोण्डू भी इसी प्रकार का एक बक्स है जो लोगों की वासना की जाँच पड़ताल के लिए खम्भे के साथ लगा रहता है। क्योंकि उसे आसपास के इलाक़ के अलावा दूर-दूर के इलाक़ों के उन सब सेठों का पता था जिनको थोड़े-थोड़े दिन के बाद या हमेशा ही अपनी वासना के तने हुए या ढीले तार ठीक कराने की आवश्यकता अनुभव होती थी।

उसे उन तमाम छोकरियों का भी पता था जो इस धन्धे में थीं। वह उनके शरीर क हर अंग-प्रत्यंग से परिचित था। उनके स्वाभाव और आदतों को समझता था। कौन किस स्वभाव की है और किस समय और किस ग्राहक के लिए उचित है। उसको इसका अच्छी तरह अनुमान था। लेकिन एक सिराज के सम्बन्ध में अभी तक कोई अनुमान नहीं लगा पाया था। वह उसकी गहराई तक नहीं पहुँच पाया था।

ढोण्डू कई बार मुझसे कह चुका था—"साली का मस्तक फिरेला है—समझ में नहीं आता मण्टो साहब, कैसी छोकरी है। घड़ी में माशा घड़ी में तोला, कभी आग, कभी पानी। हँस रही है, क़हक़हे लगा रही है, लेकिन एकदम रोना शुरू कर देगी। साली की किसी से नहीं बनती। बड़ी झगड़ालू है। हर पैसेंजर से लड़ती है। साली से कई बार कह चुका कि देख ! अपना मस्तक ठीक कर, वरना जा जहाँ से आई है। अंग पर तेरे कोई कपड़ा नहीं ; खाने को तेरे पास ढेड़िया नहीं। मारामारी और धान्दली से तो मेरी जान काम चलेगा नहीं। पर वह एक तुख़म है, किसी की सुनती ही नहीं।

मैंने सिराज को एक-दो बार देखा है। बड़ी दुबली-पतली लड़की थी मगर खूबसूरत। उसकी आँखें ज़रूरत से ज़्यादा बड़ी थीं। ऐसा लगता था कि वह उसके बैज़ावी चेहरे पर सिर्फ़ अपनी बड़ाई जताने के लिए छाई हुई हैं। मैं ने जब उसको पहली बार क्लेयर रोड पर देखा तो मुझे बड़ी उलझन हुई थी। मेरे दिल में यह इच्छा पैदा हुई थी कि उसकी आँखों से कहूँ कि भई तुम थोड़ी देर के लिए ज़रा एक तरफ़ हट जाओ, ताकि मैं सिराज को देख सकूँ। लेकिन मेरी इस इच्छा के बावजूद, जो यक़ीनन मेरी आँखों ने उसकी आँखों तक पहुँचा दी होगी, वह उसी तरह उसके सफ़ेद बैज़ावी चेहरे पर छाई रहीं।

छोटी-सी थी, मगर बावजूद अपनी जगह सम्पूर्ण मालूम होती थी। ऐसा लगता था कि वह एक सुराही है, जिसमें उसके आकार से ज़्यादा पनी मिली हुई शराब लाने की कोशिश की गई है। और नतीजे के तौर पर यह तरल पदार्थ दबाव के कारण इधर-उधर तड़प कर बह गया है।

मैंने पानी मिली हुई शराब इसलिए कहा है कि उसमें कटुता थी। वही जो तेज़ शराब में होती है। मगर ऐसा लगता था कि किसी धोखेबाज़ ने उसमें पानी मिला दिया है, ताकि बढ़ जाय। मगर सिराज़ में स्त्रीत्व वैसा का वैसा ही था। और उस झुँझलाहट से, जो उसके घने बालों से, उसकी तीखी नाक से, उसके भिंचे हुए ओंठों से, और उसकी उँगलियों से, जो नक़्शा बनाने वालों की नुकीली और तेज़-तेज़ पेंसिलें मालूम होती थीं, मैंने यह अनुमान लगाया था कि वह हर चीज़ से नराज़ है। ढोण्डू से उस खम्भे से, जिसके साथ लगकर वह खड़ा रहता था। उन ग्राहकों से जो उसके लिए लाए जाते थे। अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से भी, जो उसके सफ़ेद बैज़ावी चेहरे पर क़ब्ज़ा जमाये रखती थीं।

उसकी पतली-पतली, नुकीली उँगलियाँ जो नक़्शा बनाने वालों की पेंसिलों की तरह तेज़ थीं, ऐसा मालूम होता था कि वह उनसे भी नाराज़ है। शायद इसलिए कि जो नक्शा सिराज बनाना चाहती थी, वह नहीं बना सकती थी।

एक तो एक कहानीकार की कल्पना है जो छोटे-से तिल में संगे अस्वद की सब सख्तियाँ बयान कर सकता है। आप ढोण्डू की जुबानी सिराज के

सम्बन्ध में सुनिए। उसने मुझसे एक दिन कहा—"मण्टो साहब ! आज साली ने फिर् टण्टा कर दिया। वह तो न जाने किस दिन का पुण्य काम आ गया। और यों भी आपकी दुआ से नागपाड़ा चौकी के सब अफ़सर मेहरबान हैं, वरना ढोण्डू कल अन्दर होता। वह धमाल मचाई कि मैं तो बाप रे बाप कहता रह गया।"

मैंने उससे पूछा—"क्या बात हुई थी ?"

"वही जो हुआ करती है। मैं लाख लानत भेजी अपनी हुस्तपुस्त पर कि हमारी, जब तू इस छोकरी को अच्छी तरह जानता है तो फिर क्यों उँगली लेता है। क्यों उसको निकाल कर लाता है। तेरी माँ लगती है या बहन। मेरी तो कोई अक़ल काम नहीं करती, मण्टो साहब।"

हम दोनों ईरानी के होटल में बैठे थे। ढोण्डू ने कॉफ़ी मिली चाय सासर में उण्डेली और सड़प-सड़प पीने लगा—"असल बात यह है कि साली से मुझे हमदर्दी है।"

मैंने पूछा—"क्यों ?"

ढोण्डू ने सर को एक झटका दिया—"जाने क्यों, यह साला मालूम हो जाय तो यह रोज़-रोज़ का टण्टा खतम न हो।" फिर उसने एकदम सासर में प्याली औंधी करके मुझसे कहा—"आप को मालूम है, अभी तक कुँवारी है।"

"आप की जान की क़सम।"

मैंने जैसे उसको अपनी बात पर पुनर्विचार करने के लिए कहा—"नहीं ढोण्डू।"

ढोण्डू को मेरा यह शक बुरा लगा—"मैं आप से झूठ नहीं कहता, मण्टो साहब ! सोलह आने कुँवारी है। आप मुझसे शर्त लगा लीजिए।"

मैं सिर्फ़ इतना कह सका—"मगर ऐसा क्योंकर हो सकता है ?"

ढोण्डू ने बड़े विश्वास के साथ कहा—"ऐसा क्यों नहीं हो सकता, सिराज जैसी छोकरी तो इस धन्धे में भी रहकर सारी उम्र कुँवारी रह सकती है, साली किसी को हाथ ही नहीं लगाने देती। मुझे उसकी सारी हिस्ट्री मालूम नहीं। मैं इतना जानता हूँ, पंजाबिन है। लैमिंगटन रोड पर मेम साहब के पास

थी। वहाँ से निकाली गई क्योंकि हर पैसेंजर से लड़ती थी। दो-तीन महीने निकल गये क्योंकि मैडम के पास दस-बीस और छोकरियाँ थीं। पर मण्टो साहब ! कोई कब तक किसे खिलाता है। उसने एक दिन तीन कपड़ों में निकाल बाहर किया। वहाँ से फ़ारस रोड में दूसरी मैडम के पास पहुँची। वहाँ भी उसका मस्तक वैसा का वैसा था। एक पैसेंजर के काट खाया। दो-तीन महीने वहाँ गुज़रे.........पर साली के मिज़ाज में तो जैसे आग भरी हुई है। अब कौन उसे ठण्डा करता फिरे। फिर ख़ुदा आपका भला करे, खेतवाड़ी के एक होटल में रही, पर यहाँ भी वही धमाल—मैनेजर ने तंग आकर चलता किया। क्या बताऊँ मण्टो साहब ! न साली को खाने का होश है न पीने का—कपड़ों में जुयें पड़ी हैं, सर दो-दो महीने नहीं धुलता, चरस के एक दो सिगरेट मिल जाँय कहीं से तो फूँक लेती है, या किसी होटल से दूर खड़ी होकर फ़िल्मी रेकार्ड सुनती रहती है।"

मेरे लिए यह विवरण काफ़ी था। उसकी प्रतिक्रिया में आपको बताना नहीं चाहता ; क्योंकि कहानीकार की हैसियत से यह अनुचित है।

मैंने ढोण्डू से केवल बातचीत जारी रखने के लिए पूछा—"तुम उसे वापस क्यों नहीं भेज देते जबकि उसे इस धन्धे से कोई दिलचस्पी नहीं है। किराया तुम मुझसे लेलो !"

ढोण्डू को यह बात भी बुरी लगी—"मण्टो साहब, किराए साले की क्या बात है—मैं नहीं दे सकता !"

मैंने टोह लेनी चाही—"फिर तुम उसे वापस क्यों नहीं भेजते ?"

ढोण्डू कुछ देर के लिए चुप हो गया। कान में उड़से हुए सिगरेट का टुकड़ा निकाल कर उसने सुलगाया और धुयें को नाक के दोनों नथुनों से बाहर फेंककर उसने सिर्फ इतना कहा—"मैं नहीं चाहता कि वह जाये।"

मैंने समझा, उलझे हुए धागे का एक सिरा मेरे हाथ में आ गया है।

"क्या तुम उससे मोहब्बत करते हो ?"

ढोण्डू पर उसकी तीव्र प्रतिक्रिया हुई—"आप कैसी बातें करते हैं, मण्टो साहब !" फिर उसने दोनों कान पकड़ कर खींचे—"ख़ुदा की क़सम, मेरे दिल

में ऐसा गन्दा विचार कभी नहीं आया। मुझे बस······।" वह रुक गया—"मुझे बस, कुछ अच्छी लगती है।"

मैंने बड़ा सही सवाल किया—"क्यों ?"

ढोण्डू ने भी इसका बड़ा सही जवाब दिया—"इसलिए, इसलिए कि वह दूसरों जैसी नहीं, बाक़ी जितनी हैं, सब पैसे की पीर हैं हरामी हैं अव्वल दर्जे की पर यह जो है ना कुछ विचित्र है। निकाल के लाता हूँ तो राजी हो जाती है, सौदा हो जाता है, टैक्सी या विक्टोरिया में बैठ जाती है। अब मण्टो साहब, पैसेंजर साला मौज-शौक़ के लिए आता है। माल पानी खरच करता है, ज़रा दबा के देखता है या वैसे ही हाथ लगा के देखता है बस धमाल मच जाती है। मारामारी शुरू कर देती है। आदमी शरीफ़ हो तो भाग जाता है। पियेला हो या मवाली हो तो आफ़त·········हर मौके पर मुझे पहुँचना पड़ता है पैसे वापस करना पड़ते हैं और हाथ पैर अलग जोड़ना पड़ते हैं। क़सम कुरान की सिर्फ सिराज के लिए—और मण्टो साहब आपकी जान की क़सम, इसी साली के कारण मेरा धन्धा आधा रह गया है।"

मेरे मस्तिष्क ने सिराज की जो भूमिका तैयार की थी, मैं उसका ज़िक्र करना नहीं चाहता। लेकिन इतना है कि जो कुछ मुझे ढोण्डू ने बताया वह उसके साथ ठीक जमता नहीं था।

मैंने एक दिन सोचा ढोण्डू को बताये बिना सिराज से मिलूँ। वह बायकला स्टेशन के पास ही एक बहुत ही गन्दी जगह में रहती थी। जहाँ कूड़े-करकट के ढेर थे। आस-पास की सारी गन्दगी थी। कारपोरेशन ने यहाँ ग़रीबों के लिए ज़स्त के अनगिनत झोंपड़े बना दिये थे। मैं यहाँ उन ऊँची-ऊँची बिल्डिगों का ज़िक्र करना नहीं चाहता जो इस गन्दगी से थोड़ी दूर पर खड़ी थीं। क्योंकि उनका इस कहानी से कोई सम्बन्ध नहीं। दुनिया नाम ही ऊँचाई-नीचाई का है या उन्नति अवनति का।

ढोण्डू से मुझे उसके झोंपड़े का अता-पता मालूम था। मैं वहाँ गया

आपने अच्छे ढङ्ग के कपड़ों को उस वातावरण से छिपाते हुए। लेकिन यहाँ मेरा निजी सवाल नहीं।

बहरहाल मैं वहाँ गया। झोंपड़े के बाहर एक बकरी बँधी थी। उसने मुझे देखा तो मिमियाई। अन्दर से एक बुढ़िया निकली। जैसे पुरानी कहानियों के ढेर से कोई कुटनी लाठी टेकती हुई। मैं लौटने ही वाला था कि टाट के जगह-जगह से फटे हुए पर्दे के पीछे मुझे दो बड़ी-बड़ी आँखें नज़र आईं बिलकुल उसी तरह फटी हुई, जिस तरह वह टाट का पर्दा था। फिर मैंने सिराज का सफ़ेद बैज़ावी चेहरा देखा और मुझे उन लुटेरी आँखों पर बड़ा ग़ुस्सा आया।

उसने मुझे देख लिया था। मालूम नहीं अन्दर क्या काम कर रही थी। फ़ौरन सब छोड़ बाहर आई। उसने बुढ़िया की तरफ़ कोई ध्यान नहीं दिया और मुझसे कहा—"आप यहाँ कैसे आये ?"

मैंने संक्षेप में कहा—"तुमसे मिलना था।"

सिराज ने भी संक्षेप में ही जवाब दिया—"अन्दर आ जाओ।"

मैंने कहा—"नहीं, मेरे साथ चलिये !"

इस पर कर्मखुर्दा दास्तानों की कर्मखुर्दा कुटनी बड़े राज़-दाराना अन्दाज़ में बोली—"दस रुपये होंगे।"

मैंने बटुआ निकालकर दस रुपये बुढ़िया को दे दिये और सिराज से कहा—"आओ सिराज !"

सिराज की बड़ी-बड़ी आँखों ने एक क्षण के लिए मेरी निगाहों को रास्ता दिया कि उसके चेहरे की सड़क पर कुछ क़दम चल सकें। मैं एक बार फिर इसी नतीजे पर पहुँचा कि वह सुन्दर थी—सिकुड़ी हुई ख़ूब-सूरती। हनूत लगी ख़ूबसूरती। सदियों की सुरक्षित मामून और दफ़्न की हुई खूबसूरती। मैंने एक क्षण के लिए यों अनुभव किया कि मैं मिस्र में हूँ और पुराने दफ़ीनों की खुदाई पर लगाया गया हूँ।

मैं अधिक विस्तार में नहीं जाना चाहता। सिराज मेरे साथ थी। हम दोनों एक होटल में थे। वह मेरे सामने अपने गन्दे कपड़ों में लिपटी बैठी थी, और उसकी बड़ी-बड़ी आँखें उसके चेहरे पर अनाधिकार कब्जा किये हुए थीं।

मुझे ऐसा अनुभव हो रहा था कि उन्होंने सिर्फ़ सिराज के चेहरे को ही नहीं, उसके सारे अस्तित्व को ढंक दिया है ताकि मैं उसके किसी रुयें को भी न देख सकूँ।

बुढ़िया ने जो क़ीमत बताई थी, वह मैंने अदा कर दी थी। इसके अलावा मैंने चालीस रुपये और सिराज को दिये थे। मैं चाहता था कि मुझ से भी वह उसी तरह लड़े-झगड़े जिस तरह वह दूसरों के साथ लड़ती-झगड़ती है। इसीलिए मैंने उससे कोई ऐसी बात न की जिससे मुहब्बत और खुलूस की बू आये। उसकी बड़ी-बड़ी आँखों से मैं भी भयभीत था। वह इतनी बड़ी थीं कि मेरे अलावा मेरे आस-पास की सारी दुनिया भी देख सकती थीं।

वह खामोश थी। वाहियात ढङ्ग से उसे छेड़ने के लिए ज़रूरी था कि मेरे शरीर और दिमाग़ में ग़लत प्रकार की गर्मी हो। अतएव मैंने व्हिस्की के चार पेग पिये और उसको आम पैसेंजरों की तरह छेड़ा। उसने कोई आपत्ति नहीं कीं। मैंने एक ज़बरदस्त फिज़ूल हरकत की। मेरा विचार था कि वह बारूद जो उसके अन्दर भरी पड़ी है, उसको भक से उड़ाने के लिए यह चिनगारी काफी है। मगर आश्चर्य है कि वह कुछ स्थिर हो गई। उठकर उसने मुझे अपनी बड़ी बड़ी आँखों के फैलाव में समेटते हुए कहा—"चरस का एक सिगरेट मंगवा दो, मुझे।"

"शराब पियो!"

"नहीं, चरस की सिगरेट पिऊँगी!"

मैंने उसे चरस का सिगरेट मँगवा दिया। उसे ठेठ चर्सियों के ढंग से पीकर उसने मुझे देखा—उसकी बड़ी-बड़ी आँखें अब अपना अधिकार छोड़ चुकी थीं। मगर उसी तरह, जिस तरह कोई ग़ासिब छोड़ता है। उसका चेहरा मुझे एक उजड़ी हुई, एक बरबाद सल्तनत नज़र आया। विजित देश। उसकी आकृति की हर रेखा वीरानी की एक लकीर थी।

मगर यह वीरानी क्या थी? क्यों थी? कभी-कभी ऐसा भी होता है कि आबादियाँ ही वीरानों के कारण होती हैं। क्या वह इसी प्रकार की कोई आबादी थी जो शुरू होने के बाद किसी हमलाआवर के कारण अधूरी रह

गई थी और धीरे-धीरे उसकी दीवारें, जो अभी गज़-भर भी ऊपर नहीं उठी थीं, खण्डहर बन गई थीं।

मैं चक्कर में था, लेकिन आपको मैं इस चक्कर में नहीं डालना चाहता। मैंने क्या सोचा, क्या नतीजा निकाला, इससे आपको क्या मतलब!

सिराज कुँवारी थी या नहीं, मैं इस सम्बन्ध में जानना नहीं चाहता था। सुल्फे के धुयें में, अलबत्ता उसकी मख़मूर आँखों में मुझे एक ऐसी झलक नज़र आई थी, जिसको मेरा क़लम भी बयान नहीं कर सकता।

मैंने उससे बातें करना चाहीं मगर उसे कोई दिलचस्पी नहीं थी। मैंने चाहा कि वह मुझसे लड़े-झगड़े, मगर यहाँ भी उसने मुझे निराश किया।

मैं उसे घर छोड़ आया।

ढोण्डू को जब मेरे इस गुप्त सिलसिले का पता चला तो वह बहुत नाराज़ हुआ। उसकी दोस्ताना और ताजिराना दोनों भावनाएँ बुरी तरह घायल हुई थीं। उसने मुझे सफ़ाई का मौक़ा न दिया। केवल इतना कहा—

"मण्टो साहब! आपसे यह आशा न थी।" यह कहकर वह खम्भे से हट कर एक तरफ़ चला गया।

विचित्र बात है कि दूसरे दिन शाम को नियत समय पर वह मुझे अपने अड्डे पर नज़र न आया। मैं समझा, शायद बीमार है। मगर उससे अगले दिन भी वह वहाँ नहीं था।

एक सप्ताह गुज़र गया। वहाँ से मेरा सुबह-शाम आना-जाना होता था। मैं जब उस खम्भे को देखता, मुझे ढोण्डू याद आ जाता। मैं, बायकला स्टेशन के पास जो गन्दी जगह थी, वहाँ भी गया। यह देखने के लिए कि सिराज कहाँ है। मगर अब वहाँ सिर्फ वह किर्मखुर्दा कुटनी रहती थी। मैंने उससे सिराज के बारे में पूछा तो वह पोपली मुस्कराहट में लाखों बरस की पुरानी जिसी करवटें बदल कर बोली—"वह गई, और हैं। मँगवाऊँ?"

मैंने सोचा इसका क्या मतलब है। ढोण्डू और सिराज दोनों ग़ायब हैं। और वह भी मेरी इस खुफ़िया मुलाक़ात के बाद। लेकिन मुझे इस मुलाक़ात की

इतनी चिन्ता नहीं थी। यहाँ फिर मैं अपने विचार आप पर प्रकट नहीं करना चाहता। लेकिन मुझे आश्चर्य अवश्य था कि वह दोनों ग़ायब कहाँ हो गये। उनमें मुहब्बत की क़िस्म की कोई चीज़ नहीं थी। ढोण्डू ऐसी बातों से बहुत ऊपर था। उसकी पत्नी थी, बच्चे थे और वह उनसे बड़ी मुहब्बत करता था। फिर यह सिलसिला क्या था कि दोनों एक ही समय में ग़ायब थे।

मैंने सोचा, हो सकता है कि अचानक ढोण्डू के दिमाग़ में यह विचार आ गया हो कि सिराज को वापस घर जाना चाहिये। इस बारे में वह पहले निश्चय नहीं कर सका था। पर अब अचानक कर लिया हो।

लगभग एक महीना गुज़र गया।

एक शाम अचानक मुझे ढोण्डू नज़र आया। उसी खम्भे के साथ। मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि जैसे बड़ी देर तक करण्ट फेल रहने के बाद एकदम वापस आ गया है। उस खम्भे में जान पड़ गई। टेलीफ़ोन के डब्बे में भी—चारों तरफ़, ऊपर तारों के फैले हुये जाल, ऐसा लगता था आपस में काना-फूसी कर रहे हैं।

मैं उसके पास से गुज़रा— उसने मेरी तरफ़ देखा और मुस्कराया।

हम दोनों ईरानी के होटल में थे। मैंने उससे कुछ न पूछा। उसने अपने लिए काफ़ी मिली चाय और मेरे लिए सादा चाय मँगवाई और पहलू बदल कर इस तरह बैठा जैसे वह मुझे कोई बहुत बड़ी बात सुनाने वाला है। मगर उसने केवल इतना कहा—"और सुनाओ मण्टो साहब!"

"क्या सुनायें ढोण्डू, बस गुज़र रही है।"

ढोण्डू मुस्कराया—"ठीक कहा, आपने, बस गुज़र रही है और गुज़रती जायगी। लेकिन यह साला गुज़रते रहना या गुज़रना भी अजीब बात है। सच पूछिये तो इस दुनिया में हर चीज़ अजीब है।"

मैंने केवल इतना कहा—"तुम ठीक कहते हो ढोण्डू।"

चाय आई और हम दोनों ने पीना शुरू की। ढोण्डू ने सासर में अपनी कॉफ़ी मिली चाय उँडेली और मुझ से कहा—"मण्टो साहब, उसने मुझे बता

दी थी सारी बात। कहती थी, वह सेठ जो तुम्हारा दोस्त है, उसका मस्तक फिरेला है।"

मैं हँसा—"क्यों ?"

"बोली—मुझे होटल में ले गया। इतने रुपये दिये, पर सेठों वाली कोई बात न की।"

मैं अपने अनाड़ीपन पर संकुचित हुआ—"वह क़िस्सा ही कुछ ऐसा था ढोण्डू।"

अब ढोण्डू पेट-भर के हँसा—"मैं जानता हूँ। मुझे माफ़ कर देना कि मैं उस दिन तुम से नाराज़ हो गया था।" उसकी बातचीत में अनजाने में बेतकल्लुफ़ी पैदा हो गई—"पर अब वह क़िस्सा खलास हो गया है।"

"कौन-सा क़िस्सा ?"

"उस साली सिराज का, और किसका ?"

मैंने पूछा—"क्या हुआ ?"

ढोण्डू गटकने लगा—"जिस रोज़ आपके साथ गई। वापस आकर मुझसे कहने लगी—'मेरे पास चालीस रुपये हैं। चलो मुझे लाहौर ले चलो।' मैं बोला—'साली, यह एकदम तेरे सिर पर क्या भूत सवार हुआ ? बोली, 'नहीं, चल ढोण्डू, तुझे मेरी क़सम।' और मण्टो साहब, आप जानते हैं—मैं साली की कोई बात नहीं टाल सकता क्योंकि मुझे अच्छी लगती है। मेंने कहा 'चल !' तो टिकिट कटा के हम दोनों गाड़ी में सवार हो गये। लाहौर पहुँचकर एक होटल में ठहरे। मुझसे बोली ढोण्डू, एक बुर्क़ा ला दे। मैं ले आया। उसे पहन कर वह लगी सड़क-सड़क और गली-गली घूमने·········कई दिन गुज़र गये। मैं बोला, यह भी अच्छी रही ढोण्डू ! सिराज साली का मस्तक तो फिरेला था। साले तेरा भी भेजा फिर गया जो तू इतनी दूर इसके साथ आ गया। मण्टो साहब ! आख़िर एक दिन उसने टाँगा रुकवाया, और एक आदमी की तरफ़ इशारा करके मुझसे कहने लगी—'ढोण्डू, इस आदमी को मेरे पास ले आ, मैं चलती हूँ वापस, सराय में। मेरी अक़ल जवाब दे गई, मैं ताँगे से उतरा तो वह ग़ायब। अब मैं उस आदमी के पीछे-पीछे। आपकी दुआ से और

अल्लाहताला की मेहरबानी से मैं आदमी-आदमी को पहिचानता हूँ। दो बातें कीं और मैं ताड़ गया कि मौज-माज शौक़ करने वाला है। मैं बोला, 'बम्बई का ख़ास माल है, बोला, 'अभी चलो।' मैं बोला, 'नहीं, पहले माल-पानी दिखाओ।' उसने इतने सारे नोट दिखाये, मैं दिल में बोला—चलो ढोण्डू ! यहाँ भी अपना धन्धा चलता रहेगा। पर मेरी समझ में यह बात न आती थी कि सिराज साली ने सारे लाहौर में इसी को क्यों चुना।·······मैंने कहा, चलता है·······टाँगा लिया और सीधा सराय में, सिराज को ख़बर की। वह बोली, 'अभी ठहरो। मैं ठहर गया। थोड़ी देर के बाद उस आदमी को, जो अच्छी शक्ल का था, अन्दर ले गया। सिराज को देखते ही वह साला यों बिदका जैसे घोड़ा, सिराज ने उसे पकड़ लिया।"

ढोण्डू ने यहाँ पहुँचकर प्याली से अपनी ठण्डी काफ़ी मिली चाय एक ही घूँट में समाप्त की और बीड़ी सुलगाने लगा।

मैंने उससे कहा—"सिराज ने उसको पकड़ लिया ?"

ढोण्डू ने ऊँची आवाज़ में कहा—"हाँ जी पकड़ लिया उस साले को। कहने लगी, 'अब तू कहाँ जाता है। मेरा घर छुड़ाकर तू मुझे अपने साथ किस लिए लाया था·······तूने भी मुझसे यही कहा था कि तू मुझसे मुहब्बत करता है······पर जब मैं अपना घर-बार, अपने माँ-बाप छोड़कर तेरे साथ भाग निकली और अमृतसर से हम दोनों यहाँ इसी सराय में आकर ठहरे तो रात-ही-रात तू भाग गया—मुझे अकेली छोड़कर···किसलिए लाया था तू मुझे यहाँ ? किसलिए भगाया था तूने मुझे······मैं हर चीज के लिए तैयार थी; परन्तु मेरी सारी तैयारियाँ छोड़कर भाग गया—आ—और मण्टो साहब, वह उसके साथ लिपट गई। उस साले के आँसू टपकने लगे····रो रो कर माफ़ियां माँगने लगा। मुझसे-मुझसे ग़लती हुई—मैं डर गया था। मैं अब कभी तुमसे अलग नहीं हूँगा। क़समें खाता रहा···जाने क्या बकता रहा। सिराज ने मुझे इशारा किया···मैं बाहर चला गया। सुवह हुई तो बाहर खाट पर सो रहा था—सिराज ने, मुझे जगाया और कहा—'चलो ढोण्डू', मैं बोला, 'कहाँ ?'

बोली, 'वापस बम्बई।' मैं बोला, 'वह साला कहाँ है?' सिराज ने कहा, 'सो रहा है। मैं उस पर अपना बुर्क़ा डाल आई हूँ।"

ढोण्डू ने अपने लिए दूसरी काफ़ी मिली चाय का आर्डर दिया तो सिराज अन्दर दाख़िल हुई। उसका सफ़ेद बैज़वी चेहरा निखरा हुआ था, और उस पर उसकी बड़ी-बड़ी आँखें दो गिरे हुए सिगनल मालूम होती थीं।

मम्मंद भाई

फ़ारस रोड से आप उस तरफ़ गली में चले जाइये, जो सफ़ेद गली कहलाती है, तो उसके आख़िरी सिरे पर आपको चन्द होटल मिलेंगे। यों तो बम्बई में क़दम-क़दम पर होटल और रेस्तोराँ होते हैं, मगर यह रेस्तोराँ इस दृष्टि से बहुत दिलचस्प और अकेले हैं कि ये उस इलाक़े में स्थित हैं जहाँ भाँति-भाँति की रण्डियाँ बसती हैं।

एक ज़माना गुज़र चुका है। बस आप यही समझिए कि बीस वर्ष के लगभग, जब मैं इन रेस्तोरानों में चाय पिया करता था और खाना खाया करता था। सफ़ेद गली से आगे निकलकर 'प्ले हाउस' आता है। इधर दिन-भर हा-हू रहती है। सिनेमा के शो दिन-भर चलते रहते थे, चम्पियाँ होती रहती थीं। सिनेमाघर शायद चार थे। इनके बाहर घण्टियाँ बजा-बजा कर बड़े ज़ोर से लोगों को निमन्त्रित किया जाता था—"आओ, आओ दो आने में, फस्ट क्लास खेल—दो आने में।"

कभी-कभी ये घण्टियाँ बजाने वाले ज़बरदस्ती लोगों को अन्दर धकेल देते थे। बाहर कुर्सियों पर चम्पी कराने वाले बैठे होते थे, जिनकी खोपड़ियों की मरम्मत बड़े वैज्ञानिक ढंग से की जाती थी। मालिश अच्छी चीज़ है, लेकिन मेरी समझ में नहीं आता कि बम्बई के रहने वाले इसके इतने प्रेमी क्यों हैं। दिन को और रात को हर समय इन्हें तेल-मालिश की ज़रूरत अनुभव होती है। आप अगर चाहें तो रात के तीन बजे बड़ी आसानी से तेल

मालिशिया बुला सकते हैं। यों भी सारी रात, आप चाहे बम्बई के किसी कोने में हो, यह आवाज़ आप यक़ीनन सुनते रहेंगे—"पी—पी—पी"

यह 'पी' चम्पी का संक्षिप्त रूप है।

फ़ारस रोड यों तो एक सड़क का नाम है, लेकिन वास्तव में यह उस पूरे इलाक़े से निस्बत रखता है, जहाँ वेश्यायें बसती हैं। यह बहुत बड़ा इलाक़ा है। इसमें कई गलियाँ है जिनके विभिन्न नाम हैं। लेकिन आसानी के लिए इसकी हर गली को फ़ारस रोड या सफ़ेद गली कहा जाता है। इसमें सैकड़ों जंगला लगी दुकानें हैं, जिनमें विभिन्न रंग और उम्र की औरतें बैठ कर अपना शरीर बेचती हैं—विभिन्न दामों पर, आठ आने से आठ रुपये तक, आठ रुपये से सौ रुपये तक। हर दाम की औरत आपको इस इलाक़े में मिल सकती है।

यहूदी, पंजाबी, मरहटी, कश्मीरी, गुजराती, बंगाली, एंग्लो-इण्डियन, फ्रांसीसी, चीनी, जापानी; मतलब यह कि हर प्रकार की औरत आपको यहाँ से प्राप्त हो सकती है। ये औरतें कैसी होती हैं—माफ़ कीजियेगा इसके बारे में आप मुझसे कुछ न पूछिये। बस, औरतें होती हैंऔर उनको ग्राहक मिल ही जाते हैं।

इस इलाक़े में बहुत से चीनी भी आबाद हैं। मालूम नहीं ये क्या कारोबार करते हैं, मगर रहते हैं इसी इलाक़े में। कुछ तो रेस्तोराँ चलाते हैं, जिनके बाहर बोर्डों पर ऊपर-नीचे कीड़े-मकोड़ों के रूप में कुछ लिखा होता है; मालूम नहीं क्या।

इस इलाक़े में बिज़नेसमैन और हर क़ौम के लोग आबाद हैं। एक गली है, जिसका नाम अरबलेन है। वहाँ के लोग इसे अरबगली कहते हैं। उस ज़माने में, जिसकी मैं बात कर रहा हूँ, इस गली में शायद बीस-पच्चीस अरब रहते थे जो खुद को मोतियों के व्यापारी कहते थे। बाक़ी आबादी पंजाबियों और रामपुरियों की थी।

इस गली में मुझे एक कमरा मिल गया था, जिसमें सूर्य के प्रकाश का प्रवेश वर्जित था। हर वक्त बिजली का बल्ब रोशन रहता था। उसका

किराया साढ़े नौ रुपये माहवार था।

आप अगर बम्बई में नहीं रहे तो शायद मुश्किल से विश्वास करेंगे कि वहाँ किसी से किसी को कोई मतलब नहीं होता। अगर आप अपनी खोली में मर रहे हैं तो आपको, कोई नहीं पूछेगा। आपके पड़ोस में क़त्ल हो जाय, मजाल है जो आपको उसकी खबर हो जाय। मगर वहाँ अरबगली में केवल एक व्यक्ति ऐसा था जिसको अड़ौस-अड़ौस के हर व्यक्ति से दिलचस्पी थी। उसका नाम मम्मदभाई था।

मम्मद भाई रामपुर का रहने वाला था—अव्वल दर्जे का छटा हुआ; गतके और बन्नौत की कला में निपुण। मैं जब अरबगली में आया तो होटलों में उसका नाम अक्सर सुनने में आया, लेकिन एक लम्बे समय तक उससे मुलाक़ात न हो सकी।

मैं सुबह-सवेरे अपनी खोली से निकल जाता था, और बहुत रात गये लौटता था। लेकिन मुझे मम्मद भाई से मिलने की बड़ी इच्छा थी। क्योंकि उसके सम्बन्ध में अरबगली में अनेक दास्तानें मशहूर थीं कि बीस-पच्चीस आदमी अगर लाठियों से सशस्त्र होकर उस पर टूट पड़े तो वे उसका बाल तक बाँका नहीं कर सकते। एक मिनिट के अन्दर-अन्दर वह सबको चित कर देता है। और यह कि उस जैसा छुरीबाज़ सारी बम्बई में नहीं मिल सकता। ऐसे छुरी मारता है कि जिसके लगती है उसे पता भी नहीं चलता। सौ क़दम बिना एहसास के चलता रहता है और अन्त में एकदम ढेर हो जाता है। लोग कहते हैं कि यह उसके हाथ की सफ़ाई है।

उसके हाथ की यह सफ़ाई देखने की मुझे इच्छा नहीं थी, लेकिन यों उसके बारे में और बातें सुन-सुनकर मेरे दिल में यह इच्छा ज़रूर पैदा हो चुकी थी कि मैं उसे देखूँ। उससे बातें न करूँ लेकिन निकट से देखलूँ कि वह कैसा है। इस पूरे इलाक़े पर उसका व्यक्तित्व छाया हुआ था। वह बहुत बड़ा दादा यानी बदमाश था। लेकिन इसके बावजूद लोग कहते थे कि उसने किसी की बहू-बेटी की तरफ़ आँख उठाकर भी नहीं देखा। लँगोट का बहुत पक्का है। ग़रीबों के दुख-दर्द का शरीक है। अरबगली—केवल अरबगली ही नहीं, आस-

पास की जितनी गलियाँ थीं, उनमें जितनी ग़रीब औरतें थीं, सब मम्मद भाई को जानती थीं; क्योंकि वह अक्सर उनकी आर्थिक सहायता करता रहता था। लेकिन वह खुद उनके पास कभी नहीं जाता था। अपने किसी बालक शिष्य को भेज देता था और उनके हालात मालूम कर लिया करता था।

मुझे मालूम नहीं उसकी आमदनी के क्या साधन थे। अच्छा खाता था, अच्छा पहनता था। उसके पास एक छोटा-सा ताँगा था, जिसमें बड़ा स्वस्थ टट्टू जुता होता था। उसको वह खुद चलाता था। साथ दो या तीन चेले होते थे—बड़े आज्ञाकारी। भिण्डी बज़ार का एक चक्कर लगा कर या किसी दरगाह में होकर वह इस ताँगे पर वापस अरबगली आ जाता था, और किसी ईरानी के होटल में बैठकर अपने चेलों के साथ गतके और बन्नौत की बातों में व्यस्त हो जाता था।

मेरी खोली के साथ ही एक और खोली थी, जिसमें मारवाड़ का एक मुसलमान नृत्यकार रहता था। उसने मुझे मम्मद भाई की सैकड़ों कहानियाँ सुनाईं। उसने मुझे बताया कि मम्मद भाई एक लाख रुपये का आदमी है। उसको एक बार हैज़ा होगया था। मम्मद भाई को पता चला तो उसने फ़ारस रोड के सब डॉक्टर उसकी खोली में एकत्रित कर दिए और उनसे कहा, "देखो, अगर आशिक़ हुसन को कुछ होगया तो मैं सबका सफ़ाया कर दूँगा।" आशिक़ हुसैन ने बड़े श्रद्धाभरे स्वर में मुझसे कहा, "मण्टो साहब! मम्मद भाई फ़रिश्ता है—फ़रिश्ता। जब उसने डाक्टरों को धमकी दी तो वे सब काँपने लगे। ऐसा लग के इलाज किया कि मैं दो दिन में ठीक-ठाक होगया।"

मम्मदभाई के सम्बन्ध में अरब गली के गन्दे और निम्नश्रेणी के रेस्तोरानों में और भी बहुत कुछ सुन चुका था। एक व्यक्ति ने, जो शायद उसका शिष्य था और खुद को बहुत बड़ा फिकैत समझता था, मुझसे यह कहा था कि मम्मद दादा नेफ़े में एक ऐसा तेज़ खंजर हमेशा उड़सकर रखता है, जो उस्तरे की तरह शेव भी कर सकता है। और यह खंजर मियान में नहीं होता, खुला रहता है। बिल्कुल नंगा और वह भी उसके पेट के साथ। उसकी नोक इतनी तीखी

है कि अगर बातें करते हुए, झुकते हुए, उससे ज़रा सी-ग़लती होजाय तो मम्मद भाई का एकदम काम तमाम होके रह जाय।

जाहिर है कि उसको देखने और उससे मिलने की इच्छा दिन-प्रतिदिन मेरे दिल और दिमाग़ में बढ़ती गई। मालूम नहीं, मैंने अपनी कल्पना में उसकी शक्ल और सूरत का क्या नक्शा तैयार किया था। बहरहाल इतनी मुद्दत के बाद मुझे केवल इतना याद है कि मैं एक हृष्ट-पुष्ट, लम्बे-चौड़े इंसान को अपनी आँखों के सामने देखता था, जिसका नाम मम्मद भाई था। इस प्रकार का आदमी जो हरक्यूलस साइकिलों पर विज्ञापन के रूप में दिया जाता है।

मैं सुबह सवेरे से अपने काम पर निकल जाता था और रात के दस बजे के लगभग खाने-वाने से निवृत्त होकर वापस आकर फ़ौरन सो जाता था। इस दौरान में मम्मदभाई से कैसे मुलाक़ात हो सकती थी। मैंने कई बार सोचा कि काम पर न जाऊँ और सारा दिन अरबगली में गुज़ारकर मम्मद भाई को देखने की कोशिश करूँ। मगर अफ़सोस मैं ऐसा न कर सका। इसलिए कि मेरी नौकरी ही बड़ी वाहियात क़िस्म की थी।

मम्मद भाई से मुलाक़त करने की सोच ही रहा था कि अचानक इंफ्लुएंज़ा ने मुझ पर जबदस्त हमला कर दिया। ऐसा हमला कि मैं बौखला गया। खतरा था कि यह बिगड़ कर निमोनिया में बदल जायगा; क्योंकि अरब गली के डाक्टर ने यही कहा था। मैं बिल्कुल अकेला था। मेरे साथ जो व्यक्ति रहता था, उसको पूना में नौकरी मिल गई थी। इसलिए उसका साथ भी नसीब नहीं था। मैं बुखार में फुँका जा रहा था। इतनी प्यास थी कि जो पानी खोली में रखा था, वह मेरे लिए नाकाफ़ी था। और दोस्त-यार कोई पास नहीं था, जो मेरी देख-भाल करता।

मैं बहुत सख़्त जान हूँ। देखभाल की मुझे ख़ास आवश्यकता नहीं होती। मगर मालूम नहीं, वह किस प्रकार का बुखार था। इंफ्लुएंज़ा था, मलेरिया था या और क्या था लेकिन उसने मेरी रीढ़ की हड्डी तोड़ दी। मैं बिलबिलाने लगा। मेरे दिल में पहली बार इच्छा पैदा हुई कि मेरे पास कोई हो जो मुझे धीरज दिलाये, धीरज न दिलाये तो कम-से-कम एक सेकण्ड के लिए अपनी सूरत

दिखा कर चला जाय ताकि मुझे इस बात का सन्तोष हो कि मुझे कोई पूछने वाला भी है।

दो दिन तक मैं बिस्तर में पड़ा कष्टदायक करवटें लेता रहा। मगर कोई न आया। आना भी किसे था। मेरी जान-पहिचान के आदमी ही कितने थे—दो-तीन या चार और वे इतनी दूर तहते थे कि उनको मेरी मृत्यु की सूचना भी नहीं मिल सकती थी, और फिर वहाँ बम्बई में कौन किसे पूछता है, कोई मरे या जिये, उनकी बला से।

मेरी बहुत बुरी हालत थी। आशिक़ हुसैन डांसा की वीवी बीमार थी इसलिए वह अपने वतन जा चुका था। यह मुझे होटल के छोकरे ने बताया था। अब मैं किसको बुलाता।

बड़ी निढाल हालत में था और सोच रहा था कि ख़ुद नीचे उतरूँ और किसी डाक्टर के पास जाऊँ। इतने में दरबाज़े पर दस्तक हुई। मैंने सोच होटल का छोकरा, जिसे बम्बई की भाषा में बाहर वाला कहते हैं होगा? बड़ी मरियल आवाज में कहा, "आजाओ।"

दरवाज़ा खुला और एक छरेरे बदन का व्यक्ति जिसकी मूछें मुझे सब से पहले दिखाई दीं, अन्दर दाख़िल हुआ।

इसकी मूछें ही सब कुछ थीं। मेरा मतलब यह है कि अगर इसकी मूछें न होतीं तो बहुत सम्भव है कि वह कुछ भी न होता। उसकी मूछों ही ने ऐसा मालूम होता था कि उसके सारे अस्तित्व को जीवन प्रदान कर रखा है।

वह अन्दर आया और अपनी क़ैसर विलियम जैसी मूछों को एक उंगली से ठीक करते हुए मेरी खाट के पास आया। उसके पीछे-पीछे तीन-चार व्यक्ति थे। विचित्र वेष भूषा के। मैं बहुत हैरान था कि ये कौन हैं और मेरे पास क्यों आये हैं।

क़ैसर विलियम जैसी मूछों और छरेरे बदन वारे व्यक्ति ने मुझसे बड़े कोमल स्वर में कहा—"विमटो साहब! आपने हद करदी; साला मुझे इत्तला क्यों न दी।" मण्टो का विमटो बन जाना मेरे लिए कोई नई बात नहीं था।

इसके अलावा मैं इस मूड में भी न था कि मैं इसका सुधार करता। मैंने अपनी कमज़ोर आवाज़ में उसकी मूछों से केवल इतना कहा, "आप कौन है ?"

उसने संक्षिप्त सा उत्तर दिया, "मम्मद भाई !"

मैं उठकर बैठ गया, "मम्मद भाई ! तो आप मम्मद भाई हैं मशहूर दादा।"

मैंने यह कह तो दिया, लेकिन फ़ौरन मुझे अपने वैण्डेपन का अनुभव हुआ और रुक गया। मम्मद भाई ने छोटी उंगली से अपनी मूछों के कड़े बाल ज़रा ऊपर किये और मुस्कराया। "हाँ विमटो भाई, मैं मम्मद हूँ, यहाँ का मशहूर दादा। मुझे बाहर वाले से मालूम हुआ कि तुम बीमार हो—सालाँ यह भी कोई बात है कि तुमने मुझे खबर न की। मम्मद भाई का मस्तक फिर जाता है जब कोई ऐसी बात होती है।"

मैं जवाब में कुछ कहने वाला था कि उसने अपने साथियों में से एक से सम्बोधित होकर कहा, "क्या नाम है तेरा जा, भाग के जा, और क्या नाम है उस डाक्टर का—समझ गया ना, उससे कहना कि मम्मद भाई तुझे बुलाता है। एकदम जल्दी आ—और देख, साले से कहना, सब दवाएँ लेता आये।"

मम्मद भाई ने जिसको हुक्म दिया था वह एकदम चला गया। मैं सोच रहा था मैं उसको देख रहा था—वह तमाम दास्तानें मेरे बुख़ार चढ़े दिमाग़ में चल-फिर रही थीं, जो मैं उसके सम्बन्ध में लोगों से सुन चुका था, लेकिन गड-मड रूप में। क्योंकि बार-बार उसको देखने के कारण उसकी मूछें सब पर छा जाती थीं। बड़ी भयानक मगर बड़ी सुन्दर मूछें थीं। लेकिन ऐसा अनुभव होता था कि उस चेहरे की, जिसकी आकृति बड़ी कोमल है, केवल भयानक बनाने के लिए ये मूछें रखी गई हैं। मैंने अपने बुख़ार चढ़े दिमाग़ में सोचा कि यह व्यक्ति वास्तव में इतना भयानक नहीं जितना कि उसने ख़ुद को प्रकट कर रखा है।

खोली में कोई कुर्सी नहीं थी। मैंने मम्मद भाई से कहा कि वह मेरी चारपाई पर बैठ जाये मगर उसने इंकार कर दिया और बड़े रूखे-से स्वर में कहा, "ठीक है, हम खड़े रहेंगे।"

फिर उसने टहलते हुए, जो भी इस खोली में इस अय्याशी की क
गुंजाइश नहीं थी, कुर्त्ते का दामन उठाकर पायजामे के नेफ़े से एक ख़ं
निकाला। मैं समझा चान्दी का है। इतना चमक रहा था कि मैं आपसे क
कहूँ। यह ख़ंजर निकालकर पहले उसने अपनी कलाई पर फेरा। जो बा
उसके नीचे आये, सब साफ़ हो गये। उसने इस पर सन्तोष प्रकट किया औ
अपने नाख़ून काटने लगा।

उसके आने ही से मेरा बुख़ार कई डिग्री नीचे उतर गया था। मैंने अ
कुछ होश की हालत में उससे कहा, "मम्मदभाई, यह छुरी तुम इस तरह, अप
नेफ़े में·········यानी बिल्कुल अपने पेट के साथ रखते हो, इतनी तेज़ है, क्य
तुम्हें भय अनुभव नहीं होता !"

मम्मद भाई ने ख़ंजर से अपने नाख़ून की एक फाँक बड़ी सफ़ाई से
उड़ाते हुए जवाब दिया, "विमटो भाई यह छुरी दूसरों के लिए है। यह अच्छी
तरह जानती है। साली अपनी चीज़ है, मुझे नुक़सान कैसे पहुँचाएगी।"

छुरी से जो रिश्ता उसने स्थापित किया था, वह कुछ ऐसा ही था जैसे
कोई माँ या बाप कहे कि यह मेरा बेटा है, या बेटी है। इसका हाथ मुझ पर
कैसे उठ सकता है ?

डाक्टर आ गया, उसका नाम पिण्टो था और मैं विमटो। उसने मम्मद
भाई को अपने क्रिश्चियन ढंग से सलाम किया और पूछा कि क्या मामला है।
जो मामला था वह मम्मद भाई ने बयान कर दिया। संक्षिप्त मगर कड़े शब्दों
में, जिनमें आज्ञा थी, कि देखो, अगर तुमने विमटो भाई का इलाज अच्छी तरह
न किया तो तुम्हारी ख़ैर नहीं।

डाक्टर पिण्टो ने आज्ञाकारी लड़के की तरह अपना काम किया, नब्ज
देखी, स्टेथेस्कोप लगाकर मेरे सीने और पीठ की जाँच की। ब्लड प्रेशर देखा।
मुझसे मेरी बीमारी का पूरा विवरण पूछा। इसके बाद उसने मुझसे नहीं, मम्मद
भाई से कहा, "कोई चिन्ता की बात नहीं, मलेरिया है। मैं इंजेक्शन लगा
देता हूँ।"

मम्मद भाई मुझसे कुछ दूरी पर खड़ा था। उसने डाक्टर पिण्टो की बात सुनी और ख़ंजर से अपनी कलाई के बाल उड़ाते हुए कहा—"मैं कुछ नहीं जानता। इंजेक्शन देना है तो दे दो, लेकिन अगर इसे कुछ हो गया तो……"

डॉक्टर पिण्टो काँप गया—"नहीं मम्मद भाई सब ठीक हो जायगा।"

मम्मद भाई ने ख़ंजर अपने नेफ़े में उड़स लिया—"तो ठीक है।"

"तो मैं इंजेक्शन लगाता हूँ।" डॉक्टर ने अपना बैग खोला और सिरिंज निकाली।

"ठहरो, ठहरो !"

मम्मद भाई घबरा गया था। डाक्टर ने सिरिंज फ़ौरन बैग में वापस रखदी और मिमियाते हुए मम्मद भाई से सम्बोधित हुआ—"क्यों ?"

"बस—मैं किसी के सुई लगते नहीं देख सकता।" यह कहकर वह खोली से बाहर चला गया। साथ ही उसके साथी भी चले गये।

डॉक्टर पिण्टो ने मेरे कुनैन का इंजेक्शन लगाया, बड़े अच्छे ढंग से। वरना मलेरिया का यह इंजेक्शन बड़ा कष्टदायक होता है। जब वह निवृत्त हुआ तो मैंने उससे फ़ीस पूछी। उसने कहा—"दस रुपए।" मैं तकिए के नीचे से अपना बटुआ निकाल रहा था कि मम्मद भाई अन्दर आ गया। उस समय मैं दस रुपए का नोट डाक्टर पिण्टो को दे रहा था।

मम्मद भाई ने क्रोध-भरी आँखों से मुझे और डॉक्टर को देखा और गरज कर कहा—"यह क्या हो रहा है ?"

मैंने कहा—"फ़ीस दे रहा हूँ।"

मम्मद भाई डॉक्टर पिण्टो से सम्बोधित हुआ—"साले, यह फ़ीस कैसी ले रहे हो ?"

डॉक्टर पिण्टो बौखला गया—"मैं कब ले रहा हूँ, ये दे रहे थे !"

"साला, हम से फ़ीस लेते हो—वापस करो यह नोट।" मम्मद भाई के स्वर में उसके ख़ंजर जैसी तेज़ी थी।

डॉक्टर पिण्टो ने मुझे नोट वापस कर दिया और बैग बन्द करके मम्म भाई से क्षमा याचना करते हुए चला गया।

मम्मद भाई ने एक उँगली से अपनी काँटों जैसी मूछों को ताव दिय और मुस्कराया—"विमटो भाई, यह भी कोई बात है कि इस इलाक़े का डॉक्ट तुमसे फ़ीस ले—तुम्हारी क़सम, अपनी मूछें मुँडवा देता, अगर उस साले ने फ़ीस लेली होती, यहाँ सब तुम्हारे ग़ुलाम हैं।"

थोड़ी देर के बाद मैंने उससे पूछा—"मम्मद भाई, तुम मुझे कैसे जानते हो ?'

मम्मद भाई की मूछें थरथराईं—"मम्मद भाई किसे नहीं जानता—हम यहाँ के बादशाह हैं प्यारे, अपनी प्रजा का ख़याल रखते हैं। हमारी सी० आई० डी० है। वह हमें बताती रहती है कि कौन आया है, कौन गया है कौन अच्छी हालत में है कौन बुरी हालत में, तुम्हारे बारे में सब कुछ जानते हैं।"

मैंने यों ही मज़ाक़ में पूछा—"क्या जानते हैं आप ?"

"साला हम क्या नहीं जानते तुम अमृतसर का रहने वाला है, कश्मीरी है, यहाँ अख़बारों में काम करता है तुमने बिस्मिल्ला होटल के दस रुपए देने हैं, इसीलिए तुम उधर से नहीं गुज़रते। भिण्डी बाज़ार में एक पान वाला तुम्हारी जान को रोता है। उससे तुम बीस रुपए दस आने के सिगरेट लेकर फूँक चुके हो।"

मैं पानी-पानी हो गया।

मम्मद भाई ने अपनी सख़्त मूँछों पर एक उँगली फेरी और मुस्कराकर कहा—"विमटो भाई ! कुछ फ़िक्र न करो। तुम्हारे सब क़र्ज़ चुका दिये गये हैं। अब तुम नये सिरे से मामला शुरू कर सकते हो। मैंने उन सालों से कह दिया है कि ख़बरदार, अगर विमटो भाई को तुमने तंग किया—और मम्मद भाई तुमसे कहता है कि इंशाअल्लाह कोई तुम्हें तंग नहीं करेगा।"

मेरी समझ में नहीं आता था कि उससे क्या कहूँ ? बीमार था, कुनैन का टीका लग चुका था। जिसके कारण कानों में शांय-शांय हो रही थी। इसके अतिरिक्त मैं उसकी निष्ठा के नीचे इतना दब चुका था कि अगर मुझे कोई निकालने की कोशिश करता तो उसे बहुत मेहनत करनी पड़ती। मैं केवल इतना कह सका—"मम्मद भाई, ख़ुदा तुम्हें ज़िन्दा रखे—तुम ख़ुश रहो।"

मम्मद भाई ने अपनी मूँछों के बाल ज़रा ऊपर किये और कुछ कहे बिना चला गया।

डॉक्टर पिण्टो हर रोज़ सुबह-शाम आता रहा। मैंने उससे कई बार फ़ीस का ज़िक्र किया, मगर उसने कानों को हाथ लगाकर कहा—"नहीं, मिस्टर मण्टो! मम्मद भाई का मामला है। मैं एक ढेड़िया भी नहीं ले सकता।"

मैंने सोचा, यह मम्मद भाई कोई बहुत बड़ा आदमी है। यानी भयानक क़िस्म का, जिससे डॉक्टर पिण्टो जो बड़ा कंजूस है, डरता है और मुझसे फ़ीस लेने की हिम्मत नहीं करता। हालाँकि वह अपनी जेब से इंजेक्शनों पर खर्च कर रहा है।

बीमारी के दौरान में मम्मद भाई भी बिना नाग़ा आता रहा। कभी सुबह आता था, कभी शाम को। अपने छः-सात चेलों के साथ और मुझे हर सम्भव तरीक़े से ढाढ़स देता था कि मामूली मलेरिया है। तुम डॉक्टर पिण्टो के इलाज से इंशाअल्लाह बहुत जल्द ठीक-ठाक हो जाओगे।"

पन्द्रह दिन के बाद मैं ठीक-ठाक हो गया। इस दौरान में मम्मद भाई की आकृति को अच्छी तरह देख चुका था।

जैसा कि मैं इससे पहले कह चुका हूँ, वह छरैरे बदन का आदमी था। उम्र यही पच्चीस-तीस के दरमियान होगी। पतली-पतली बाहें। टाँगें भी ऐसी ही थीं। हाथ बला के फुर्तीले थे। उनसे जब वह छोटा-सा तेज़ धार चाक़ू किसी दुश्मन पर फेंकता था तो वह सीधा उसके दिल में खुबता था। यह मुझे अरब गली के लोगों ने बताया था।

उसके सम्बन्ध में अनेक बातें प्रसिद्ध थीं। उसने किसी को क़त्ल किया था, मैं इस सम्बन्ध में दावे से कुछ नहीं कह सकता। छुरीमार वह अव्वल दर्जे का था। बन्नौट और गदके में निपुण। यों सब कहते थे कि वह सैकड़ों क़त्ल कर चुका है। मगर मैं यह अब भी मानने को तैयार नहीं।

लेकिन जब मैं उसके खंजर के बारे में सोचता हूँ तो मेरे शरीर में झरझरी-सी होने लगती है। यह भयानक हथियार क्यों वह हर समय अपनी शलवार के नेफ़े में उड़से रहता है?

मैं जब अच्छा हो गया तो एक दिन अरब गली के एक थर्ड क्लास चीन
रेस्तोराँ में उससे मेरी मुलाक़ात हुई। वह अपना वही भयानक खंजर निका
कर अपने नाखून काट रहा था। मैंने उससे पूछा—"मम्मद भाई आजक
बन्दूक़-पिस्तौल का ज़माना है—तुम यह खंजर क्यों लिये फिरते हो ?"

मम्मद भाई ने अपनी सख्त मूँछों पर एक उँगली फेरी और कहा—"विमद
भाई ! बन्दूक़-पिस्तौल में कोई मज़ा नहीं। उन्हें कोई बच्चा भी चला सकत
है। घोड़ा दबाया और ठाँ ······· उसमें क्या मज़ा है ? यह चीज़ ······ य
खंजर ············ यह छुरी ············ यह चाक़ू ················ मज़ा आता
ना खुदा की क़सम ··········· यह वह है ··········· तुम क्या कहा कर
हो ? ······· हाँ ······· आर्ट ········· इसमें आर्ट आता है मेरी जान ·····
जिसको चाक़ू या छुरी चलाने का आर्ट न आता हो वह एकदम कण्डम है
पिस्तौल क्या है—खिलौना है जो नुक़सान पहुँचा सकता है—पर इसमें क्
मज़ा आता है—कुछ भी नहीं। तुम यह खंजर देखो ········ इसकी तेज़ धा
देखो।" यह कहते हुए उसने अँगूठे पर थूक लगाया और उसकी धार पर फे
—"इससे कोई धमाका नहीं होता—बस, यों पेट के अन्दर दाखिल करदो—इ
सफ़ाई से कि उस साले को मालूम तक न हो ············ बन्दूक़-पिस्तौल स
बकवास है।"

मम्मद भाई से अब हर रोज़ किसी-न-किसी वक़्त भेंट हो जाती थी
मैं उसका आभारी था। लेकिन जब मैं इसका ज़िक्र करता तो वह नाराज़ ह
जाता। कहता था कि मैंने तुम पर कोई एहसान नहीं किया। वह तो मे
फ़र्ज़ था।

जब मैंने जाँच-पड़ताल की तो मुझे मालूम हुआ कि फारस
रोड के इलाक़े का वह एक प्रकार का शासक था। ऐसा शासक जो ह
व्यक्ति की खबरगीरी करता था। कोई बीमार हो, किसी को कोई तकलीफ़ ह
मम्मद भाई उसके पास पहुँच जाता था। और यह उसकी सी० आई० डी० व
काम था, जो उसको हर बात की सूचना देती रहती थी।

वह दादा था यानी एक खतरनाक गुण्डा। लेकिन मेरी समझ में अब भी नहीं आता कि वह किस विचार से गुण्डा था। खुदा वाहिद-शाहिद है मैंने उसमें कोई गुण्डापन नहीं देखा। एक केवल उसकी मूँछें थीं जो उसे भयानक बनाये रखती थीं। लेकिन उसको उनसे प्यार था। वह उनका इस तरह लालन-पालन करता था जिस तरह कोई अपने बच्चे का करता है।

उसकी मूँछों का एक-एक बाल खड़ा था जैसे सीह के काँटे। मुझे किसी ने बताया था कि मम्मद भाई प्रतिदिन अपनी मूँछों को मलाई खिलाता है। जब खाना खाता है तो सालन भरी उँगलियों से अपनी मूँछें ज़रूर मरोड़ता है कि बुज़ुर्गों के कहने के अनुसार यों बालों में ताक़त आती है।

मैं इससे पहले शायद कई बार कह चुका हूँ कि उसकी मूँछें बड़ी भयानक थीं। वास्तव में मूँछों का नाम ही मम्मद भाई था। या उस ख़ंजर का जो उसके तंग घोरे की शलवार के नेफ़े में हर वक्त मौजूद रहता था। मुझे इन दोनों चीज़ों से डर लगता था—न मालूम क्यों?

मम्मद भाई यों तो इस इलाक़े का बहुत बड़ा दादा था, लेकिन वह सब का हमदर्द था। मालूम नहीं उसकी आमदनी के क्या साधन थे? पर वह हर ज़रूरतमन्द की यथासमय सहायता करता था। इस इलाक़े की तमाम रण्डियाँ उसको अपना पीर मानती थीं। वह एक माना हुआ गुण्डा था, इसलिए ज़रूरी था कि उसका सम्बन्ध वहाँ की किसी वेश्या से होता। मगर मुझे मालूम हुआ कि इस प्रकार के सिलसिले से उसका दूर का भी सम्बन्ध नहीं रहा था।

मेरी उसकी बड़ी दोस्ती हो गई थी। अनपढ़ था, लेकिन जाने क्यों वह मेरी इतनी इज़्ज़त करता था कि अरब गली के सब लोग ईर्ष्या करने लगे थे। एक दिन सुबह सवेरे दफ़्तर जाते वक्त मैंने चीनी के होटल में किसी से सुना कि मम्मद भाई गिरफ़्तार कर लिया गया है। मुझे बहुत आश्चर्य हुआ इसलिए कि तमाम थाने वाले उसके दोस्त थे। क्या कारण हो सकता था? मैंने उस व्यक्ति से पूछा कि क्या बात हुई जो मम्मद भाई गिरफ़्तार हो गया। उसने मुझसे कहा कि इस अरब गली में एक औरत रहती है, जिसका नाम शीरींबाई

उसी साले का क़सूर था—एकदम मुड़ गया। इस कारण सारा मामला कण्डम हो गया—लेकिन मर गया—ज़रा तकलीफ़ के साथ, जिसका मुझे दुख है।"

आप ख़ुद सोच सकते हैं कि यह सुन कर मेरी प्रतिक्रिया क्या होगी। यानी उसको दुख था कि वह उसे ठीक तरह से क़त्ल न कर सका। और यह कि मरने में उसे ज़रा कष्ट हुआ है।

मुक़द्दमा चलना था—और मम्मद भाई इससे बहुत घबराता था। उसने अपने जीवन में अदालत की सूरत कभी नहीं देखी थी। मालूम नहीं, उसने इससे पहले भी क़त्ल किये थे कि नहीं। लेकिन जहाँ तक मेरी जानकारी का सम्बन्ध है, वह मजिस्ट्रेट, वकील और गवाह के बारे में कुछ नहीं जानता था। इसलिए कि उसका वास्ता इन लोगों से कभी पड़ा ही नहीं था।

वह बहुत चिन्तित था। पुलिस ने जब केस पेश करना चाहा और तारीख निश्चित हो गई तो मम्मद भाई बहुत परेशान हो गया। अदालत में मजिस्ट्रेट के सामने कैसे हाज़िर हुआ जाता है, इसके बारे में उसे कुछ भी मालूम नहीं था। बार-बार वह अपनी सख़्त मूँछों पर उँगलियाँ फेरता था और मुझसे कहता था, "विमटो साहब! मैं मर जाऊँगा, पर कोरट में नहीं जाऊँगा—साली, मालूम नहीं कैसी जगह है।"

अरब गली में उसके कई दोस्त थे। उन्होंने उसको धीरज बँधाया कि मामला संगीन नहीं है। कोई गवाह मौजूद नहीं, एक सिर्फ़ उसकी मूँछें हैं जो मजिस्ट्रेट के दिल में उसके विरुद्ध निश्चय ही कोई विरोधी भावना पैदा कर सकती हैं।

जैसा कि मैं इससे पहले कह चुका हूँ, उसकी सिर्फ़ मूँछें ही थीं जो उसको भयानक बनाती थीं—यदि ये न होतीं तो वह हरगिज़-हरगिज़ 'दादा' दिखाई न देता।

उसने बहुत ग़ौर किया। उसकी ज़मानत थाने ही में हो गई थी। अब उसे अदालत में पेश होना था। मजिस्ट्रेट से वह बहुत घबराता था। ईरानी के होटल में जब मेरी उसकी मुलाक़ात हुई तो मैंने अनुभव किया कि वह बहुत परेशान है। उसको अपनी मूँछों की तरफ़ से बड़ी चिन्ता थी। वह सोचता

था कि उनके साथ अगर वह अदालत में पेश हुआ तो बहुत सम्भव है, उसको सज़ा हो जाये।

आप समझते हैं कि यह कहानी है। मगर यह वास्तविकता है कि वह बहुत परेशान था। उसके सब चेले हैरान थे। इसलिए कि वह कभी हैरान और परेशान नहीं हुआ था। उसको मूँछों की फ़िक्र थी। क्योंकि उसके कुछ क़रीबी दोस्तों ने उससे कहा था—"मम्मद भाई ! कोर्ट में जाना है तो इन मूँछों के साथ कभी न जाना, मजिस्ट्रेट तुम को अन्दर कर देगा।"

और वह सोचता था—हर वक्त सोचता था कि उसकी मूँछों ने उस व्यक्ति को क़त्ल किया है या उसने ? लेकिन किसी नतीजे पर पहुँच नहीं सकता था। उसने अपना ख़ंजर, मालूम नहीं जो पहली बार ख़ून से परिचित हुआ था या इससे पहले कई बार हो चुका था, अपने नेफ़े से निकाला और होटल के बाहर गली में फेंक दिया। मैंने आश्चर्य से पूछा—"मम्मद भाई ! यह क्या ?"

"कुछ नहीं, विमटो भाई, बहुत घोटाला हो गया है—कोर्ट में जाना है—यार दोस्त कहते हैं कि तुम्हारी मूँछें देखकर वह ज़रूर तुमको सज़ा [देगा]—अब बोलो मैं क्या करूँ ?"

मैं क्या बोल सकता था। मैंने उसकी मूँछों की तरफ़ देखा जो वास्तव में बड़ी भयानक थीं। मैंने उससे सिर्फ़ इतना कहा—"मम्मद भाई ! बात तो ठीक है। तुम्हारी मूँछें मजिस्ट्रेट के फ़ैसले को अवश्य प्रभावित करेंगी—सच पूछो तो जो कुछ होगा, तुम्हारे विरुद्ध नहीं—मूँछों के विरुद्ध होगा।"

"तो मैं मुण्डवा दूँ ?" मम्मद भाई ने अपनी चहीती मूँछों पर बड़े प्यार से उँगली फेरी।

मैंने उससे पूछा—"तुम्हारा क्या ख़्याल है ?"

"मेरा ख़्याल जो कुछ भी है, वह तुम न पूछो। लेकिन यहाँ हर व्यक्ति का यही ख़्याल है कि मैं इन्हें मुण्डवा दूँ, ताकि वह साला मजिस्ट्रेट मेहरबान हो जाये। तो मुण्डवा दूँ विमटो भाई ?"

मैंने कुछ देर ठहर कर कहा —"हाँ, अगर तुम मुनासिब समझते हो तो मुण्डवा दो—अदालत का सवाल है और तुम्हारी मूँछें वास्तव में बड़ी भयानक हैं।"

दूसरे दिन मम्मद भाई ने अपनी मूँछें—अपनी जान से भी प्रिय मूँछें मुण्डवा डालीं। क्योंकि उसकी इज़्ज़त ख़तरे में थी—लेकिन सिर्फ़ दूसरों के कहने से।

मिस्टर एफ़० एच० टेल की अदालत में उसका मुक़द्दमा पेश हुआ। मैं भी वहाँ मौजूद था। उसके विरुद्ध कोई गवाह नहीं था। लेकिन मजिस्ट्रेट साहब ने उसको ख़तरनाक गुण्डा क़रार देते हुए तड़ीपार यानी राज्य बदर कर दिया। उसको केवल एक दिन मिला था, जिसमें उसे अपना सारा हिसाब किताब तय करके बम्बई छोड़ देना था।

अदालत से बाहर निकल कर उसने मुझसे कोई बात नहीं की। उसकी छोटी-बड़ी उँगलियाँ बार-बार ऊपर के होंठ की तरफ़ बढ़ती थीं, मगर वहाँ कोई बाल ही नहीं था।

शाम को, जब उसे बम्बई छोड़कर कहीं और जाना था, मेरी उसकी मुलाक़ात ईरानी के होटल में हुई। उसके दस-बीस चेले आस-पास की कुर्सियों पर बैठे चाय पी रहे थे। जब मैं उससे मिला तो उसने मुझसे कोई बात न की। मूँछों के बिना वह बहुत शरीफ़ आदमी दिखाई दे रहा था। लेकिन मैंने अनुभव किया कि वह बहुत दुखी है।

उसके पास कुर्सी पर बैठकर मैंने उससे कहा—"क्या बात है मम्मद भाई—?"

उसने जवाब में एक बहुत बड़ी गाली ख़ुदा मालूम किस को दी और कहा—"साला अब मम्मद भाई ही नहीं रहा।"

मुझे मालूम था कि वह राज्य बदर किया जा चुका है—"कोई बात नहीं, मम्मद भाई! यहाँ नहीं तो किसी और जगह सही।"

उसने तमाम जगहों को अनेक गालियाँ दीं—"साला अपने को यह

ग़म नहीं—यहाँ रहे या किसी और जगह रहें—ये साला मूँछें
मुण्डवाईं ?"

फिर उसने उन लोगों को, जिन्होंने उसको मूँछें मुण्डवाने की सल
दी थी, एक करोड़ गालियाँ दीं और कहा—"साला, अगर मुझे तड़ीपार
होना था तो मूँछों के साथ क्यों न हुआ ?"

मुझे हँसी आगई। वह आग-बबूला हो गया—"साला तुम कै
आदमी है बिमटो, हम सच कहता है, ख़ुदा की क़सम हमें फाँसी ल
देते..........पर.........यह बेवकूफ़ी तो हमने ख़ुद की—आज तक किसी
न डरा था साला अपनी मूँछों से डर गया।" यह कह कर उसने दुहत्तड़ अ
मुँह पर मारा—मम्मद भाई लानत है तुझ पर—साला अपनी मूँछों से
गया—अब जा अपनी माँ के...................।"

और उसकी आँखों में आँसू आ गये, जो उसके बिना मूँछों वाले चे
पर कुछ विचित्र से दिखाई देते थे।

तक़ी कातिब

वली महम्मद जब तक़ी को पहली बार दफ़्तर में लाया तो उसने मुझे बिल्कुल प्रभावित न किया

लखनऊ और दिल्ली के मूर्ख और स्वेच्छाचारी कातिबों से मेरा जी जला हुआ था। एक था उसको समय-असमय पेश लगाने की बुरी आदत थी। मौत को मूत और सौत को सूत बना देता था। मैंने बहुत समझाया मगर वह न समझा। उसको अपने भाषाविज्ञ होने का बड़ा घमण्ड था। मैंने जब भी उसको पेश के मामले में टोका, उसने अपनी दाढ़ी को ताव देकर कहा—"मैं अहले ज़बान हूँ साहब ! इसके अलावा तीस सीपारों (सिपारों) का हाफ़िज़ हूँ। एराब (मात्रा) के मामले में आप मुझसे कुछ नहीं कह सकते ।"

मैंने उसे और कुछ न कहा और विदा कर दिया।

उसकी जगह एक दिल्ली के कातिब ने ली। और सब ठीक था मगर उसे संशोधन करने का पागलपन सवार था। और संशोधन भी ऐसा कि मेरी आँखों में खून उतर आता था। कोई लेख था मैंने उसमें यह लिखा—"उसके हाथों के तोते उड़ गये।" उसने यह संशोधन किया—"उसके हाथ-पाँव के तोते उड़ गये।"

मैंने उसका मज़ाक़ उड़ाया तो वह शुद्ध देहलवी स्वर में बड़बड़ाता नौकरी से अलग हो गया।

रामपुर का एक कातिब था। बहुत ही सुन्दर लेखक। मगर उसको संक्षेप के दौरे पड़ते थे। लाइनें-की-लाइनें और पैरे-के-पैरे खा जाता था। जब उसको पूरा पृष्ठ दुबारा लिखने को कहता तो वह उत्तर देता—"इतनी मेहनत मुझसे न होगी साहब—पोट में लिख दूँगा।"

पोट में लिखवाना मुझे सख़्त नापसन्द था। अतएव यह रामपुरी कातिब भी अधिक दिन दफ़्तर में न टिक सके।

वली महम्मद, हेड कातिब जब तक़ी को पहली बार दफ़्तर में लाया उसने मुझे बिल्कुल प्रभावित न किया। खत का नमूना देखा। ख़ास अच्छा नहीं था। गोलाइयों में प्रौढ़ता नहीं थी। मैं गुंजान लिखाई चाहता हूँ, वह छिदरा लिखता था। कम उम्र था; बातचीत में विचित्र-सी बौखलाहट थी। बात करते समय उसका एक बाज़ू हिलता रहता था जैसे क्लॉक का पेण्डुलम। रंग सफ़ेद था। ऊपर के होंठ पर भूरे-भूरे बारीक बाल थे। ऐसा मालूम होता था कि उसने खुद किताबत की स्याही से हल्की-हल्की मूँछें बनाई हैं।

मैंने उसे कुछ दिन के लिए रखा, मगर उसने अपनी सज्जनता, मेहनत और आज्ञाकारिता से दफ़्तर में अपने लिए एक स्थायी.स्थान बना लिया। वली महम्मद से मेरे ताल्लुक़ात बहुत बेतकुल्लुफ़ थे। जिंसियात के बारे में अपनी जानकारी बढ़ाने के लिए वह प्रायः मुझसे बातचीत किया करता था। उस दौरान में महम्मद तक़ी खामोश रहता। औरत और मर्द के जिंसी सम्बन्ध की बातचीत खुले शब्दों में होती तो उसके कानों की लवें लाल हो जातीं। वली महम्मद जो कि विवाहित था, उसे ख़ालिस पंजाबी ढंग से छेड़ता।

"मण्टो साहब, इसका मुर्दा खराब हो रहा है। इससे कहिए कि शादी करले—जब भी कोई फ़िल्म देखकर आता है, सारी रात करवटें बदलता रहता है।"

तक़ी आम तौर पर झेंपते हुए कहता—"मण्टो साहब, झूठ बोलता है।"

वली महम्मद की काली नुकीली मूँछें थिरकने लगतीं—"और यह झूठ

है मण्टो साहब कि यह चाली की यहूदी छोकरियों की नंगी टाँगें देखकर उनका चित्रण किया करता है।"

तक़ी की नाक की चोंच पर पसीने की बूँदें प्रकट हो जातीं—"मैं तो-मैं तो ड्राइङ्ग सीख रहा हूँ।"

वली महम्मद उसे और छेड़ता—"ड्राइङ्ग चेहरे की सीखो—यह किस ड्राइङ्ग मास्टर ने तुमसे कहा कि पहले नंगी टाँगों से शुरू करो ?"

महम्मद तक़ी रुआँ-सा हो जाता अतएव मैं वली महम्मद से मना करता कि वह उसे न छेड़ा करे। इस पर वली महम्मद कहता—"मण्टो साहब ! मैं इसके वालिद साहब से कह चुका हूँ। आपसे भी कहता हूँ कि इस लौण्डे की शादी करा दीजिए, वरना इसका मुर्दा बिल्कुल ख़राब हो जायगा।"

महम्मद तक़ी के बाप से मेरी मुलाक़ात हुई। दाढ़ीवाले बुज़ुर्ग थे। नमाज़-रोज़े के पाबन्द, माथे पर मेहराब। भिण्डी बाज़ार में वली महम्मद की भागीदारी में घी की एक छोटी-सी दूकान करते थे। महम्मद तक़ी से उनको बहुत मुहब्बत थी। बातें करते हुए उन्होंने मुझसे कहा—"तक़ी दो बरस का था कि उसकी वाल्दा का इन्तकाल हो गया। ख़ुदा उसकी आत्मा को शान्ति प्रदान करे। बहुत ही नेक बीवी थी। मण्टो साहब विश्वास कीजिए, उसकी मौत के बाद सम्बन्धियों और दोस्तों ने बहुत ज़ोर दिया कि दूसरी शादी करलूँ। मगर मुझे तक़ी का खयाल था। मैंने सोचा, हो सकता है कि मैं उसकी तरफ़ से विमुख हो जाऊँ। अतएव दूसरी शादी के विचार को मैंने अपने पास तक न आने दिया, और उसका पालन-पोषण ख़ुद अपने हाथों से किया। अल्लाह का बड़ा फ़ज़ल और करम है कि उसने मुझ गुनाहगार की लाज रखली। ख़ुदा उसको ज़िन्दगी और नेकी की हिदायत दे।"

महम्मद तक़ी अपने बाप की इस क़ुर्बानी की हमेशा प्रशंसा किया करता—"बहुत कम बाप इतनी बड़ी क़ुर्बानी कर सकते हैं। अब्बा जवान थे। अच्छा खाते-पीते थे। चाहते तो चुटकियों में उनको अच्छी-से-अच्छी बीबी मिल जाती। लेकिन मेरे लिए उन्होंने ब्रह्मचर्य-जीवन व्यतीत किया। इतनी बुहब्बत

और इतने प्यार से मेरा पालन-पोषण किया कि मुझे माँ का अभाव अनुभव ही न होने दिया।"

वली मुहम्मद भी तक़ी के बाप का प्रशंसक था। मगर उसे केवल यह शिकायत थी कि मौलाना ज़रा सनकी हैं—"मण्टो साहब, आदमी बहुत अच्छा है। कारोबार में सोलह आने खरा है तक़ी से बहुत प्यार करता है.........लेकिन यह प्यार......मैं अब अपने विचार किन शब्दों में प्रकट करूँ। उसका प्यार हद से बढ़ा हुआ है......यानी वह इस तरह प्यार करता है जिस तरह कोई ईर्षालु प्रेमी अपनी प्रेमिका से करता है।"

मैंने वली महम्मद से पूछा—"तुम्हारा मतलब ?"

वली महम्मद ने अपनी मूछों की नोकें ठीक कीं—"मतलब !...वह मतलब मैं नहीं समझा सकता। आप खुद समझ लीजिए।"

मैंने मुस्करा कर कहा—"भाई तुम ज़रा विस्तार से काम लो तो मैं समझ जाऊँगा।"

वली महम्मद ने शीर्षक लिखने वाले क़लम को कपड़े के चीथड़े से साफ़ करते हुए कहा—"मौलाना सनकी हैं—मुझे मालूम नहीं क्यों। तक़ी कहता है कि पहले उनके प्यार और उनकी दया का यह रंग नहीं था, जो अब है। यानी पिछले कुछ वर्षों से आपने अपने प्रिय पुत्र से पूछ-गछ का एक लामतनाही (कभी खत्म न होने वाला) सिलसिला शुरू कर रखा है—लामतनाही ठीक प्रयुक्त हुआ है ना मण्टो साहब ?"

"ठीक प्रयुक्त हुआ है—हाँ पूछगछ का सिलसिला क्या है ?"

"यही—तुम रात को देर से क्यों आये ?—सफ़ेदगली में क्या करने गये थे ?—वह यहूदन तुमसे क्या बात कर रही थी ? इतने फ़िल्म क्यों देखते हो ?—पिछले हफ्ते तुमने कितावत के पैसों में से चार आने कहाँ रखे ? वली महम्मद से तुम बाईकल्ला के पुल पर बैठे क्या बातें कर रहे थे ?—क्या वह तुम्हें बहका तो नहीं रहा था कि शादी करलो ?"

मैंने वली महम्मद से पूछा—"बहकाना क्या हुआ ?"

"मालूम नहीं—लेकिन मौलाना समझते हैं कि तक़ी का हर दोस्त उसे शादी के लिए बहकाता है। मैं उसको बहकाता तो नहीं लेकिन यह ज़रूर कहता हूँ और अक्सर कहता हूँ कि जानेमन शादी करलो, वरना तुम्हारा मुर्दा ख़राब हो जायगा—और मण्टो साहब मैं आपसे ख़ुदा की क़सम खाकर कहता हूँ कि लड़के को एक बीवी की सख़्त ज़रूरत है।"

चार-पाँच वर्ष बीत चुके थे। महम्मद तक़ी की मूँछों के भूरे बाल अब बारीक नहीं थे। हर रोज़ दाढ़ी मूण्डता था, टेढ़ी माँग भी निकालता था। और दफ़्तर में जब जिंसियात के बारे में बातचीत छिड़ती तो वह क़लम दाँतों में दबाकर ध्यान से सुनता। औरत और मर्द के जिंसी सम्बन्ध का ज़िक्र खुले शब्दों में होता तो उसके कानों की लबें लाल न होतीं। महम्मद तक़ी को बीवी की ज़रूरत हो सकती थी।

एक दिन जबकि और कोई दफ़्तर में नहीं था और अकेला तक़ी तख़्त पर दीवार के साथ पीठ लगाए पर्चे की आख़िरी कापी तैयार कर रहा था, मैंने उसकी आकृति का ध्यान से अध्ययन करते हुये पूछा—"तक़ी तुम शादी क्यों नहीं करते?"

प्रश्न अचानक किया गया था, तक़ी चौक पड़ा—"जी?"

"मेरा ख़याल है तुम शादी करलो।"

तक़ी ने क़लम कान में उड़सा और ज़रा शरमा कर कहा—"मैंने अब्बा से बात की है।"

"क्या कहा उन्होंने?"

तक़ी विस्तार पूर्वक कुछ कहना चाहता था मगर न कह सका—"जी वह ....कुछ नहीं........वह कहते हैं अभी इतनी जल्दी क्या है?"

"तुम्हारा क्या ख़याल है?"

"जो उनका है।"

इस जवाब के बाद बातचीत का सिलसिला ख़त्म होगया। तक़ी ने परचे की आख़िरी कापी पूरी की और उसे जोड़कर चला गया।

कुछ दिन बाद वली मुहम्मद ने तक़ी की उपस्थिति में मुझसे कहा, "मण्टो साहब, बड़ा नक़रा हुआ। मौलाना और तक़ी में धनपटास होते-होते रह गई।"

वली मुहम्मद यों तो उर्दू बोलता था लेकिन पंजाबी और बम्बई की उर्दू के कई शब्द हास्य उत्पन्न करने के उद्देश्य से इस्तेमाल करने का आदी था।

तक़ी ने उसकी बात सुनी और खामोश रहा।

वली मुहम्मद ने अपनी थिरकती हुई नुकीली मूँछों को आँखों का कोण बदल कर देखा; फिर इस कोण को बदल कर तक़ी की ओर देखा और मुझसे कहा, "लड़के को एक अदद बीवी की सख्त ज़रूरत है लेकिन बाप इस ज़रूरत को मानता नहीं। उसने बहुत समझाया मण्टो साहब, मगर मौलाना ने एक न सुनी। मण्टो साहब, यह क्या मुहावरा है 'एक न सुनी'? मौलाना ने सुनी तो हज़ार थीं लेकिन सुनी-अनसुनी कर दीं। ये मुहावरे भी खूब चीज़ हैं; और मौलाना भी अपने वक्त के एक लाजवाब मुहावरे हैं।"

तक़ी भिन्नाकर मुझसे सम्बोधित हुआ, "मण्टो साहब, इससे कहिए खामोश रहे।"

वली मुहम्मद बोला, "मण्टो साहब, इससे कहिए कि मौलाना के सामने खामोश रहा करे। वह शादी की इजाजत नहीं देते, ठीक है। बाप हैं, वह उसका नफ़ा या नुक़सान सोच सकते हैं।"

बाप-बेटे की चख ज़रूर हुई थी। तक़ी ने मौलाना से प्रार्थना की थी कि वह उसका विवाह किसी अच्छे घराने में कर दें। यह सुनकर वह चिढ़ गये और तक़ी के दोस्तों पर बरसने लगे, "तुम्हारे दोस्तों ने तुम्हारी जड़ों में पानी फेर दिया। जब मैं तुम्हारी उम्र का था तो मुझे मालूम ही न था कि शादी-ब्याह किस जानवर का नाम है?"

यह सुनकर तक़ी ने डरते-डरते कहा, "लेकिन......आपकी शादी तो चौदह बरस की उम्र में हुई थी।"

मौलाना ने उसे डाँटा, "तुम्हें क्या मालूम है?"

तक़ी खामोश होगया। वह बहुत ही कम बोलने वाला और आज्ञाकारी

पुत्र था। दो-चार बार उसने बेतकल्लुफी से बातचीत की और उसके खुलने का मौक़ा दिया तो मुझे मालूम हुआ कि उसे अचानक पत्नी की आवश्यकता है। उसने मुझसे एक रोज़ झेंपते हुए कहा, "मेरे विचार आजकल बहुत भटके रहते हैं। वली मुहम्मद शादीशुदा है; वह जब अपनी पत्नी के साथ बाहर जाता है तो मेरे दिल को न जाने क्या होता है? आपने एक बार एहसासे कमतरी के बारे में बातें की थीं; मुझे भी एहसास होता है कि मैं बहुत जल्द उसका शिकार होने वाला हूँ। पर क्या करूँ अब्बा मानते ही नहीं; मैं शादी की बात करता हूँ तो वह चिढ़ जाते हैं। जैसे······शादी करना कोई गुनाह है।···वह अपनी मिसाल देते हैं कि देखो तुम्हारी माँ के मरने के बाद मैंने अभी तक शादी नहीं की। लेकिन मण्टो साहब, इस मिसाल का मुझसे क्या ताल्लुक है? उन्होंने शादी की, अल्लाह को यह मंजूर नहीं था कि उनकी बीवी ज़िन्दा रहती। उन्होंने बहुत बड़ी क़ुरबानी की कि मेरी ख़ातिर दूसरी शादी नहीं की; लेकिन वह चाहते हैं कि मैं कुँवारा ही रहूँ।"

मैंने पूछा, "क्यों?"

तक़ी ने जवाब दिया, "मालूम नहीं मण्टो साहब, वह तो मेरी शादी के बारे में कुछ सुनने के लिए तैयार नहीं। मैं उनकी बड़ी इज़्ज़त करता हूँ लेकिन कल बातों-बातों में जज़बात के रौ में बह कर मैं गुस्ताख़ी कर बैठा।"

"क्या?"

तक़ी ने बड़े पश्चातापपूर्ण स्वर में कहा, "मैं मिन्नत-समाजत करते-करते और समझाते-समझाते तंग आगया था। कल जब उन्होंने मुझसे कहा कि वह मेरी शादी के बारे में कुछ सुनने के लिए तैयार नहीं तो मैंने ग़ुस्से में आकर उनसे यह कह दिया, "आप नहीं सुनेंगे तो मैं अपनी शादी का बन्दोबस्त खुद कर लूँगा।"

मैंने उससे पूछा, "यह सुनकर उन्होंने क्या कहा?"

"अभी-अभी घर से निकल जाओ।" चुनाँचे मैं रात यहाँ दफ़्तर ही में सोया।"

मैंने शाम को वली मुहम्मद के ज़रिए मौलाना को बुलवाया। कुछ

भावुकतापूर्ण बातचीत हुई तो उन्होंने तक़ी को गले लगाकर रोना शुरू कर दिया। फिर शिकवे होने लगे, "मुझे मालूम नहीं होता कि यह लड़का जिसकी ख़ातिर मैंने दूसरी शादी नहीं की एक रोज़ मेरे साथ ऐसी गुस्ताख़ी के साथ पेश आयेगा। मैंने माँ की तरह इसे पाला-पोसा; आप सूखी खाई लेकिन इसके लिए खुद अपने हाथों घी में गूँथ-गूँथकर पराठे पकाए।"

मैंने बात काटकर कहा, "मौलाना, यह कब आपके इन एहसानों को नहीं मानता। आपकी तमाम क़ुरबानियाँ इसके दिल व दिमाग़ पर अंकित हैं। आपने इतना कुछ किया, क्या आप इसकी शादी नहीं कर सकते? माँ-बाप की तो सबसे बड़ी ख्वाहिश यही होती है कि वे अपनी औलाद को फलता-फूलता देखें। आपके घर में बहू आएगी; बाल-बच्चे होंगे; दादा जान बनकर आपको फ़ख्र और ख़ुशी न होगी?"

"मेरा विचार है तक़ी को ग़लतफ़हमी हुई है कि आप शादी के ख़िलाफ़ हैं।"

मौलाना लाजवाब हो गये। रूमाल से अपनी आँखें पोंछने लगे। थोड़ी देर के बाद बोले, "पर कोई ऐसा रिश्ता तो हो ......।"

"आप 'हाँ' कर दीजिए, सब ठीक हो जायेगा।"

वली मुहम्मद ने यह कुछ ऐसे अन्दाज़ में कहा, "चलिए अँगूठा लगाइए।" मौलाना बितक गये। "लेकिन ऐसी जल्दी भी क्या है?"

इस पर मैंने बुज़ुर्गों के अन्दाज़ में कहा, "नेक काम में देर नहीं होनी चाहिए। आप औरों को छोड़िए, खुद अपनी पसंद का रिश्ता ढूँढिए। माशा-अल्लाह डोंगरी में सब लोग आपको जानते हैं। यहाँ बम्बई में पसन्द न हो तो अपने पंजाब में सही। कौन सा काले कोसों दूर है?"

मौलाना ने सिर हिलाकर सिर्फ़ इतना कहा, "जी हाँ।"

मैंने तक़ी के कंधे पर हाथ रखा, "लो भई तक़ी, फ़ैसला होगया। मौलाना को तुम ज़िद्दी बच्चों की तरह अब तंग न करना। मैं ख़ुद इस मामले में उनकी मदद करूँगा।" यह कहकर मैं मौलाना से सम्बोधित हुआ, "यहाँ कुछ खान्दान हैं उनसे मेरी कुछ जान-पहचान है। मैं अपनी बीवी से कहूँगा। वह लड़कियाँ देख लेगी।"

तक़ी ने धीरे से कहा, "आपकी बहुत मेहरबानी।"

कई महीने बीत गये लेकिन तक़ी की शादी की बातचीत कहीं भी शुरू नहीं हुई। वली मुहम्मद इस दोरान में उसे बराबर उकसाता रहा। वह अपने बाप के पीछे पड़ा; नतीजा यह हुआ कि एक रोज़ मौलाना मेरे पास आये और कहा, "साँकली स्ट्रीट की तीसरी गली में नुक्कड़ की बिल्डिंग में, शायद आप जानते ही हों; यू० पी० का एक खानदान रहता है।"

मैंने फ़ौरन कहा, "आप कहिये मैं जानता हूँ।"

मौलाना ने पूछा, "कैसे लोग हैं?"

"बेहद शरीफ़।"

"जो सबसे बड़ा भाई है उसकी बड़ी लड़की मैंने सुना है खासी-अच्छी है।"

"मैं पैग़ाम भिजवा देता हूँ।"

मौलाना घबरा गये। "नहीं, नहीं। इतनी जल्दी नहीं। यह भी तो देखना है कि लड़की शक्ल-सूरत की कैसी है।"

"मैं अपनी बीवी के ज़रिए मालूम कर लूँगा।"

मेरी बीवी ने उस लड़की को देखा तो पसन्द किया। खासी शक्ल-सूरत की थी; शिक्षा मैट्रिक तक थी; स्वभाव की बड़ी अच्छी थी। ये सब खूबियाँ मौलाना को बता दी गईं। वह लड़की के बाप से मिले; दहेज़ और 'मेहर' के बारे में बातचीत की। ये आरंभिक बातें ठीक ढङ्ग से तै हो गईं। तक़ी बहुत खुश था लेकिन तीन मास बीत गये और बात वहीं-की-वहीं रही। अन्त में एक दिन मालूम हुआ कि लड़की वालों ने आगे किसी बात-चीत से इन्कार कर दिया है क्योंकि वे तक़ी के बाप की मीख-मेख से तंग आ चुके हैं। बार-बार वह उनसे जा-जाकर यह कहता था, "देखिए, लड़की के दहेज़ में इतने जोड़े हों; बर्तनों की तादाद यह हो। लड़की ने अगर मेरे हुक्म की तामील नहीं की तो उसकी सज़ा तलाक़ होगी। फ़िल्म देखने हरगिज़ न जायगी; पर्दे में रहेगी।"

मैंने जब इन अनुचित बातों का ज़िक्र तक़ी से किया तो उसने अपने

बाप का पक्ष लिया। "नहीं मण्टो साहब, लड़की वाले ठीक नहीं। अब्बा का यह कहना ठीक है कि वे मुझे बीवी का मुरीद बनाना चाहते हैं।"

मैंने कहा, "ऐसा है तो छोड़ो। किसी और जगह सही।"

तक़ी ने कहा, "अब्बा कोशिश कर रहे हैं।"

मौलाना ने डोंगरी में अपने एक परिचित के द्वारा बातचीत शुरू की। सब कुछ तय हो गया; निकाह की तारीख़ भी निश्चित हो गई। लेकिन एकदम कुछ हुआ और सब कुछ रह गया। लड़की वालों को तक़ी पसन्द था; लेकिन जब मौलाना से अच्छी तरह मिलने-जुलने का मौक़ा आया तो वे पीछे हट गये और लड़की का रिश्ता किसी और जगह पक्का कर दिया। तक़ी ने फिर अपने बाप की तरफ़दारी की और मुझसे कहा, "ये लोग बड़े लालची थे मण्टो साहब! एक दौलतमंद का लड़का मिल गया तो अपनी बात से फिर गये। अब्बा शुरू ही से कहते थे कि ये लोग मुझे ईमानदार नहीं मालूम होते लेकिन मैं ख़्वाहमख़्वाह उनके पीछे पड़ा रहा कि जल्दी मामला तै कीजिए।"

कुछ अर्से के बाद तीसरी जगह कोशिश शुरू हुई। यहाँ का नतीजा भी सिफ़र। चौथी जगह बात-चीत शुरू हुई तो तक़ी ने मुझसे कहा, "मण्टो साहब, वे लोग आपसे मिलना चाहते हैं।"

"बड़े शौक़ से मिलें।"

मैं उनसे मिला। आदमी शरीफ़ थे; मौलाना की उनसे संक्षेप में कुछ बातें हुईं। मैंने तक़ी की प्रशंसा की। मामला तै हो गया लेकिन कुछ ही दिनों में गड़बड़ पैदा हो गई। लड़की के बड़े भाई ने किसी से सुना कि मौलाना दूकान पर अपने एक दोस्त से कह रहे थे, "लड़की मेरे कहने पर न चली तो मैं तक़ी की दूसरी शादी कर दूँगा।" वह यह सुनकर मेरे पास आया। मैंने मौलाना को बुलवाया; उनसे पूछा तो दाढ़ी पर हाथ फेर कर कहने लगे, "मैंने क्या बुरा कहा? मैं ऐसी बहू घर में नहीं लाना चाहता जो मेरा कहा न माने। मैं तक़ी की शादी इसलिए कर रहा हूँ कि मुझे आराम पहुँचे।"

अजीबो-ग़रीब मंतिक़ (तर्क) थी। मैंने पूछा, "आपको आराम ज़रूर

पहुँचना चाहिए मगर आपकी यह मंतिक़ मेरी समझ में नहीं आई। ऐसा मालूम होता है कि खाविन्द और बीवी का रिश्ता आपकी समझ से बालातर है।"

मौलाना ने कुछ खिन्नता से कहा, "मैं खाविन्द रह चुका हूँ मण्टो साहब ! आपके ख्यालात मेरे ख्यालात से मुख़तलिफ़ हैं। आपके साथ काम करके मुझे अफ़सोस है मेरे लड़के के ख्यालात भी बदल गये हैं।" यह कहकर वह तक़ी से बोले, "सुना तुमने ? मैं ऐसी लड़की घर में लाना चाहता हूँ जो मेरी, तुम्हारी खिदमत करे।"

इसके बाद देर तक बातें होती रहीं। उनसे जो मैंने नतीजा निकाला वह मैंने तक़ी को बता दिया। "देखो भई, बात यह है कि तुम्हारे वालिद साहिब तुम्हारी शादी नहीं करना चाहते। यही कारण है कि वह हरबार कोई-न-कोई आपत्ति कर बैठते हैं। कोई-न-कोई बहाना ढूँढ निकालते हैं ताकि मामला आगे न बढ़ने पाये।"

मौलाना खामोश अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरते रहे। तक़ी ने मुझसे पूछा, "क्यों ? यह मेरी शादी क्यों नहीं करना चाहते ?"

मेरे मुँह से हठात् निकल गया, "मौलाना का दिमाग़ खराब है।"

मौलाना को इस क़दर तैश आया कि मुँह में झाग भर कर वाही-तबाही बकने लगे। मैंने तक़ी से कहा, "जाओ, मौलाना को किसी दिमाग़ के अस्पताल में ले जाओ। और मेरी यह बात याद रखो कि जब तक इनका दिमाग़ दुरुस्त नहीं होगा तुम्हारी शादी हरगिज़-हरगिज़ नहीं करेंगे। इनके दिमाग़ की खराबी का कारण वह क़ुर्बानी है जो उन्होंने तुम्हारे लिए की।"

मौलाना ने तक़ी का बाज़ू ज़ोर से पकड़ा और अनाप-शनाप सुनाते चले गये।

वली मुहम्द मेरे पास बैठा खामोशी से सुन रहा था। इतनी देर वह अपनी नुकीली मूँछों के अस्तित्व से बिल्कुल विमुख रहा। जब मौलाना और तक़ी चले गये तो उसने आँखों का कोण ठीक करके उनकी ओर देखा और कहा, "मुर्दा खराब हो रहा है बेचारे का। लेकिन मण्टो साहब, आपने बावन तोला और पाव रत्ती की बात कही। मुहावरा ठीक इस्तेमाल हुआ है ना ?"

"तुमने मुहावरा ठीक इस्तेमाल किया है ; लेकिन अफ़सोस है कि मौलाना की तबीयत साफ करते हुए मैंने उचित शब्दों का इस्तेमाल नहीं किया।"

"बड़ा दुष्ट है जी।" वली मुहम्मद ने यह कहकर अपनी मूँछ का हठीला बाल बड़े ज़ोर से उखेड़ा और बड़ी गंभीरता से मुझसे पूछा, "मण्टो साहब, क्या मतलब था आपका इससे कि मौलाना के दिमाग़ की खराबी की वजह वह क़ुर्बानी है जो उसने तक़ी के लिए की ? बात जरूर बावन तोले और पाव रत्ती की है ; लेकिन पूरी तरह मेरे दिमाग़ में बैठी नहीं।"

मैंने उसे समझाया, "बीवी की मौत के बाद एक वक़्ती जज़्बा था जिसकी वजह से मौलाना ने दूसरी शादी न करने का फ़ैसला किया। यह जज़्बा अपनी तबीई (स्वाभाविक) मौत मरा। तो आपके लिए दो सोग हो गये—एक बीबी की मौत का ; दूसरा जज़्बे की मौत का। वक़्त गुज़रता गया और मौलाना नीम के करेले बनते गये। मुझे तो भई वली मुहम्मद, बहुत तरस आता है ग़रीब पर। एक शख़्स जिसने पच्चीस बरस तक अपने और औरत के दरम्यान एक दीवार हाइल रखी हो वह किस तरह अपने जवान बेटे के पहलू में एक जवान औरत देख सकता है। और वह भी नज़रों के बहुत करीब ?"

दूसरे दिन तक़ी न आया। वली महम्मद के हाथ उसने किताबत का बिल भिजवा दिया। जो अदा कर दिया गया तक़ी को बहुत दुख था कि मैंने उसके बाप को बुरा-भला कहा। मैंने वली मुहम्मद से कह दिया, "मुझे कोई अफ़सोस नहीं। तक़ी को मालूम होना चाहिए था कि उसका बाप दिमाग़ी और रूहानी तौर पर बीमार है। लेकिन मुझे यह अफ़सोस ज़रूर है कि उसने काम छोड़ दिया है।"

वली मुहम्मद ने तक़ी से वापस आने को कहा। मगर वह न माना। उसने किसी और दफ़्तर में नौकरी नहीं की। वह दूकान पर बैठकर घी बेचने लगा। वली मुहम्मद ने जब ज़ोर दिया तो उसने वहीं किताबत का काम भी शुरू कर दिया।

मैं एक काम से देहली चला गया। तीन-चार महीने वहाँ रहकर बम्बई लौटा तो वली मुहम्मद ने प्लेटफार्म पर से यह खबर सुनाई कि तक़ी की शादी

ठीक तरह से एक हफ़्ता पहले हो चुकी है। मुझे विश्वास न हुआ। लेकिन वली मुहम्मद ने क़ुरान की क़सम खाकर कहा, "मण्टो साहब, मैं झूठ नहीं कहता। 'निकाह' के छुवारे मैंने सँभाल कर रखे हैं। जिसकी शादी न होती हो उसके लिए इक्सीर साबित होंगे।"

मैंने तक़ी को बुलाया पर वह न आया।

लगभग डेढ़ महीने बाद एक दिन सुबह-सुबह वली मुहम्मद आया। उसकी नुकीली मूँछें थिरक रही थीं। कहने लगा, "मण्टो साहब, कल धनपटास हो गई, बाप-बेटे में। तक़ी अपनी बीबी को लेकर कहीं चला गया।"

"कहाँ ?"

"मालूम नहीं।" यह कहकर आँखों का कोण बदल कर वली मुहम्मद ने अपनी नुकीली मूँछों को देखा। "कुछ समझ में नहीं आता, मण्टो साहब। लड़ाई का सबब मालूम नहीं हो सका। मौलाना बिल्कुल खामोश हैं।"

मौलाना बहुत देर तक खामोश रहे और उनका बेटा मुहम्मद तक़ी भी। बम्बई में वली मुहम्मद और उसके साथियों ने तक़ी को बहुत तलाश किया मगर उसका कोई सुराग़ न मिला।

बहुत दिनों बाद वली मुहम्मद से मुझे तक़ी का एक खत मिला ; लिखा था, "बहुत दिनों से सोच रहा था कि आपको खत लिखूँ और हालात बताऊँ मगर हिम्मत न होती थी। मैं आपसे दरख्वास्त करता हूँ कि यह खत किसी और को न दिखाइएगा।"

"आपने मेरे वालिद के बारे में जो कुछ कहा था ठीक निकला। मैंने आपकी बातों का बुरा माना था इसलिए कि मुझे असलियत मालूम न थी, जो मुझे शादी के बाद मालूम हुई। मेरे वालिद का दिमाग़ वाक़ई दुरुस्त नहीं हो सकता है पहले ठीक हो लेकिन मेरी शादी के बाद तो उनकी दिमाग़ी हालत बिल्कुल दुरुस्त न थी। उनकी यही कोशिश थी कि मैं अपनी बीवी से दूर रहूँ मुझ में और उसमें दूरी पैदा करने के लिए वह अजीबो-ग़रीब तरीक़े ईजाद करते थे जो एक दीवाना ही कर सकता है। मैंने बहुत देर तक बर्दाश्त किया ; मुझे तमाम बातें लिखते हुए शर्म आती है। एक रोज़ मेरी बीवी ग़ुसल

खाने में नहा रही थी ; आपने दरवाज़े में से झाँक कर देखना शुरू कर कर दिया............। मैं और क्या लिखूँ ? समझ में नहीं आता उनके दिमाग़ को क्या हो गया है। ख़ुदा उनकी हालत पर रहम करे।

"मैं यहाँ दिल्ली में हूँ और बहुत ख़ुश हूँ।"

मैं यह ख़त पढ़ रहा था कि वली मुहम्मद आया। उसके पास तक़ी का एक और खत था। मेरी तरफ़ बढ़ाकर उसने कहा, "यह खत तक़ी ने दिल्ली से अपने बाप को लिखा है। सिर्फ कुछ लफ़्ज़ हैं।"

मैंने पूछा, "क्या ?"

वली मुहम्मद ने कहा, "पढ़ लीजिए।"

मैंने ये शब्द पढ़े, "क़िब्ला वालिद साहब, मैं यहाँ ख़ैरियत से हूँ। आपने मेरा घर आबाद किया है; मेरी ख्वाहिश है कि आप भी अपना घर आबाद करलें।"

वली मुहम्मद ने आँखों का कोण बदल कर अपनी नुकीली मूँछों को देखा और कहा, "मण्टो साहब, लड़का होशियार हो गया है ; लेकिन मौलाना तो अपनी बात पक्की कर चुके हैं।"

"कहाँ ?"

वली मुहम्मद की मूँछें थिरकीं। "एक घी बेचने वाली से। पाँचों घी में और सर कढ़ाई में। मुहावरा ठीक इस्तेमाल किया है ना मण्टो साहब ?"

मैं हँस पड़ा।

लायसेंस

अब्बू कोचवान बड़ा छैल-छबीला था। उसका ताँगा-घोड़ा भी शहर में नम्बर वन था। कभी मामूली सवारी नहीं बिठाता था। उसके लगे-बँधे ग्राहक थे, जिनसे उसको रोज़ाना दस-पन्द्रह रुपये प्राप्त हो जाते थे, जो अब्बू के लिए काफ़ी थे। दूसरे कोचवानों की तरह नशा-पानी की उसे आदत नहीं थी। लेकिन साफ़-सुथरे कपड़े पहनने और हर वक्त बाँका बने रहने का उसे बहुत शौक़ था।

जब उसका ताँगा घुँघरू बजाता किसी सड़क पर से गुज़रता तो लोगों की आँखें ख़ुद-ब-ख़ुद उसकी तरफ़ उठ जातीं—"वह बाँका अब्बू जा रहा है। —देखो तो किस ठाठ से बैठा है! ज़रा पगड़ी देखो, पगड़ी कैसी तिरछी बँधी है!"

अब्बू लोगों की निगाहों से यह बातें सुनता तो उसकी गर्दन में एक बड़ा बाँका ख़म पैदा हो जाता और उसके घोड़े की चाल और अधिक आकर्षक हो जाती। अब्बू के हाथों से घोड़े की बागें कुछ इस ढंग से पकड़ी होती थीं, जैसे उनको उसे पकड़ने की ज़रूरत नहीं। ऐसा लगता था कि घोड़ा इशारों के बग़ैर चला जा रहा है। उसको अपने मालिक के हुक्म की ज़रूरत नहीं। कभी-कभी तो ऐसा मालूम होता था कि अब्बू और उसका घोड़ा चुन्नी, दोनों एक हैं। बल्कि सारा ताँगा एक हस्ती है। और वह हस्ती अब्बू के सिवा और कौन हो सकती थी।

वे सवारियाँ जिन को अब्बू स्वीकार नहीं करता था, दिल-ही-दिल में उसको गालियाँ देती थीं। कोई-कोई बद्दुआ भी देती थीं—"ख़ुदा करे इसका घमण्ड टूटे—इसका ताँगा-घोड़ा किसी दरिया में जा गिरे।"

अब्बू के होंठों पर, जो हल्की-हल्की मूँछों की छाँव में रहते थे, आत्म-विश्वास की मुस्कराहट नाचती रहती थी। उसको देखकर कई कोचवान जल-भुन जाते थे। अब्बू की देखा-देखी चन्द कोचवानों ने इधर-उधर से उधार लेकर ताँगे बनवाये। उनको पीतल के साज़ो-सामान से सजाया। मगर फिर भी अब्बू की-सी शान पैदा न हो सकी। उनको वे ग्राहक न मिल सके जो अब्बू के और उसके ताँगे-घोड़े के शैदा थे।

एक दिन अब्बू दोपहर के समय एक वृक्ष की छाया में ताँगे पर बैठा ऊँघ रहा था कि एक आवाज़ उसके कानों में भनभनाई। अब्बू ने आँखें खोल कर देखा। एक औरत ताँगे के पास खड़ी थी। अब्बू ने मुश्किल से उसे एक नज़र देखा मगर उसकी तीखी जवानी एकदम उसके दिल में चुभ गई। वह औरत नहीं, जवान लड़की थी सोलह-सत्रह वर्ष की। दुबली-पतली लेकिन मज़बूत। रंग साँवला, मगर चमकीला। कानों में चाँदी की छोटी-छोटी बालियाँ। सीधी माँग, सुतवाँ नाक। उसकी फुनंग पर छोटा-सा चमकीला तिल। लम्बा कुर्त्ता और नीला लाचा। सर पर चदरिया।

लड़की ने कुँवारी आवाज़ में अब्बू से पूछा—"वीरा, टेशन का क्या लोगे?

अब्बू के होंठों की मुस्कराहट शरारत में बदल गई—"कुछ नहीं।"

लड़की के चेहरे की साँवलाहट में लाली झलकने लगी—"क्या लोगे टेशन का?"

अब्बू ने उसको अपनी नज़रों में समोते हुए कहा—"तुझसे क्या लेना है भागभरिये! चल आ—बैठ ना ताँगे में।"

लड़की ने घबराये हुए हाथों से अपने मज़बूत सीने को ढँका, जो भी वह ढँका हुआ था—"कैसी बातें करते हो तुम?"

अब्बू मुस्कराया—"चल आ, अब बैठ भी जा—ले लेंगे, जो तू दे देगी।"

लड़की ने कुछ देर सोचा। फिर पायेदान पर पाँव रखकर ताँगे में

बैठ गई—"जल्दी ले चल टेशन ।"

अब्बू ने पीछे मुड़कर देखा—"बड़ी जल्दी है तुझे सोहनिये !"

"हाय हाय, तू तू..........."लड़की कुछ और कहते-कहते रुक गई।

ताँगा चल पड़ा—और चलता रहा—कई सड़कें घोड़े के सुमों के नीचे से निकल गईं। लड़की सहमी बैठी थी। अब्बू के होंठों पर शरारत भरी मुस्कराहट नाच रही थी। जब बहुत देर हो गई तो लड़की ने डरी हुई आवाज़ में पूछा—"टेशन नहीं आया अभी तक ?"

अब्बू ने लापरवाही से जवाब दिया—"आ जायगा—तेरा-मेरा टेशन एक ही है।"

"क्या मतलब ?"

अब्बू ने पलट कर लड़की की तरफ़ देखा और कहा—"अल्हड़े, क्या तू इतना भी नहीं समझती कि तेरा-मेरा टेशन एक ही है। उसी वक्त एक हो गया था, जब अब्बू ने तेरी तरफ़ देखा था। तेरी जान की क़सम तेरा ग़ुलाम झूठ नहीं बोलता।"

लड़की ने सर पर पल्लू ठीक किया। उसकी आँखें साफ़ बता रही थीं कि वह अब्बू का मतलब समझ चुकी थी। उसके चेहरे से इस बात का भी पता चलता था कि उसने अब्बू की बात का बुरा नहीं माना। लेकिन वह इस दुविधा में थी कि दोनों का टेशन एक हो या न हो, अब्बू बाँका-सजीला तो है, लेकिन क्या वफ़ादार भी है ? क्या वह अपना टेशन छोड़ दे, जहाँ उसकी गाड़ी पता नहीं कब की जा चुकी थी ?

अब्बू की आवाज़ ने उसे चौंका दिया—"क्या सोच रही है, भाग भरिए ?"

घोड़ा मस्त ख़रामी से दुल्की चल रहा था। हवा गीली थी। सड़क के दोनों ओर खड़े वृक्ष भाग रहे थे। उनकी टहनियाँ झूम रही थीं। घुँघरुओं की झंकार के सिवा और कोई आवाज़ नहीं थी। अब्बू गर्दन मोड़े लड़की के साँवले सौन्दर्य को दिल-ही-दिल में चूम रहा था। कुछ देर के बाद उसने घोड़े की बागें जंगले की सलाख़ के साथ बाँध दीं, और उचक कर पिछली सीट पर

लड़की के साथ बैठ गया। वह खामोश रही। अब्बू ने उसके दोनों हाथ पकड़ लिये—"दे दे अपनी बागें मेरे हाथ में।"

लड़की ने केवल इतना कहा—"छोड़ भी दे।" लेकिन वह फ़ौरन ही अब्बू के बाजुओं में थी। इसके बाद उसने विरोध न किया। उसका दिल अलबत्ता ज़ोर-ज़ोर से फड़फड़ा रहा था। जैसे खुद को छुड़ाकर उड़ जाना चाहता हो।

अब्बू हौले-हौले प्यार भरे स्वर में उससे कहने लगा—"यह ताँगा-घोड़ा मुझे अपनी जान से अधिक प्यारा था। लेकिन क़सम ग्यारहवीं वाले पीर की, यह बेच दूँगा और तेरे लिए सोने के कड़े बनवा दूँगा। आप फटे-पुराने कपड़े पहनूँगा; लेकिन तुझे राजकुमारी बनाकर रखूँगा। क़सम वादहू लाशरींक की, जिन्दगी में यह मेरा पहला प्यार है। तू मेरी न बनी तो मैं तेरे सामने गला काट लूँगा अपना।"

फिर उसने लड़की को अपने से अलग कर दिया—"जाने क्या होगया है मुझे—चलो तुम्हें टेशन छोड़ आऊँ।"

लड़की ने हौले से कहा—"नहीं, अब तुम मुझे हाथ लगा चुके हो।"

अब्बू की गर्दन झुक गई—"मुझे माफ़ कर दो—मुझसे ग़लती हुई।"

"निभा लोगे इस ग़लती को?"

लड़की के स्वर में चेलेंज था। जैसे किसी ने अब्बू से कहा हो—"ले जाओगे अपना टाँगा, इस टाँगे से आगे निकाल कर। उसका झुका हुआ सर उठा। आँखों में चमक पैदा हुई।

"भाग भरिए!" कहकर उसने अपने मज़बूत सीने पर हाथ रखा—"अब्बू अपनी जान दे देगा।"

लड़की ने अपना हाथ बढ़ाया—"तो यह है मेरा हाथ।"

अब्बू ने उसका हाथ मज़बूती से पकड़ लिया—"क़सम अपनी जवानी की। अब्बू तेरा गुलाम है।"

दूसरे दिन अब्बू और उस लड़की का निकाह होगया। वह जिला गुजरात की मोचन थी। नाम उसका इनायत यानी नीती था। अपने रिश्तेदारों के साथ आई थी। वे स्टेशन पर उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे कि अब्बू और उसकी मुठ-भेड़ होगई जो फ़ौरन ही मुहब्बत की सारी मंज़िलें तय कर गई। दोनों बहुत खुश थे। अब्बू ने ताँगा-घोड़ा बेचकर तो नीती के लिए सोने के कड़े नहीं बनवाए थे लेकिन अपने जमा किये हुए पैसों से उसको सोने की बालियाँ ख़रीद दी थीं। कई रेशमी कपड़े भी बनवा दिये थे।

लस कस करते हुए रेशमी लाचे में जब नीती अब्बू के सामने आती तो उसका दिल नाचने लगता—"क़सम पंजतन पाक की दुनिया में मुझ जैसा ख़ुशक़िस्मत और कोई नहीं।" वह उसको अपने सीने के साथ लगा लेता—"तू मेरे दिल की रानी है।"

दोनों जवानी की मस्तियों में डूबे हुए थे। गाते थे, हँसते थे, सैर करते थे, एक-दूसरे की बलायें लेते थे। एक महीना इसी तरह गुज़र गया कि अचानक एक दिन पुलिस ने अब्बू को गिरफ़्तार कर लिया। नीती भी पकड़ी गई। अब्बू पर अपहरण का मुक़द्दमा चला। नीती अटल रही। लेकिन फिर भी अब्बू की दो साल की सज़ा हो गई। जब अदालत ने हुक्म सुनाया तो नीती अब्बू के साथ लिपट गई। रोते हुए उसने केवल इतना कहा—"मैं अपने माँ-बाप के पास कभी नहीं जाऊँगी—घर बैठकर तेरा इन्तजार करूँगी।"

अब्बू ने उसकी पीठ पर थपकी दी—"जीती रह..........ताँगा-घोड़ा मैंने दीने के सुपुर्द किया हुआ है—उससे किराया वसूल करती रहना।"

नीती के माँ-बाप ने बहुत ज़ोर लगाया, मगर वह उनके साथ न गई। थक-हारकर उन्होंने उसको अपने हाल पर छोड़ दिया। नीती अकेली रहने लगी। दीना उसे शाम को पाँच रुपए दे जाता था, जो उसके खर्चे के लिए काफ़ी थे। इसके अलावा मुक़द्दमे के दौरान में रोज़ाना पाँच रुपये के हिसाब से जो कुछ बना वह भी उसके पास था।

सप्ताह में एक बार नीती और अब्बू की मुलाक़ात जेल में होती थी।

जो कि उन दोनों के लिए बहुत ही संक्षिप्त थी । नीती के पास जितनी जमा-पूँजी थी, वह अब्बू को आराम पहुँचाने में खर्च हो गई । एक मुलाक़ात में अब्बू ने नीती के बुच्चे कानों की तरफ़ देखा और पूछा—"बालियाँ कहाँ गईं नीती ?"

नीती मुस्करा दी और सन्तरी की तरफ़ देख कर अब्बू से कहा—"गुम हो गईं कहीं ।"

अब्बू ने कुछ क्रोधित होकर कहा—"तुम मेरा इतना ध्यान न रखा करो । जैसा भी हूँ, ठीक हूँ ।"

नीती ने कुछ न कहा । समय पूरा हो चुका था । मुस्कराती हुई वहाँ से चल दी, मगर घर जाकर बहुत रोई । घण्टों आँसू बहाए ; क्योंकि अब्बू का स्वास्थ्य बहुत गिर रहा था । इस मुलाक़ात में तो वह उसे पहचान भी न सकी थी । ग्राण्डील अब्बू अब घुल-घुल कर आधा होगया था । नीती सोचती थी कि उसको उसका ग़म खा रहा है । उसके वियोग ने अब्बू की यह हालत कर दी है । लेकिन उसको यह मालूम नहीं था कि अब्बू दिक़ (क्षय) का मरीज़ है । और यह मर्ज़ उसे विरसे में मिला है । अब्बू का बाप अब्बू से कहीं अधिक ग्राण्डील था, लेकिन दिक़ ने उसे कुछ दिनों ही में क़ब्र के अन्दर पहुँचा दिया । अब्बू का बड़ा भाई कड़ियल जवान था । मगर भरी जवानी में उसे इस बीमारी ने दबोच लिया । खुद अब्बू इस यथार्थ से अनभिज्ञ था । अतएव जेल के अस्पताल में जबकि वह अन्तिम साँस ले रहा था, उसने दुख-भरे स्वर में नीती से कहा—"मुझे मालूम होता कि मैं इतने जल्दी मर जाऊँगा तो क़सम वादहू ला शरीक की, तुझे कभी अपनी बीवी न बनाता····मैंने तेरे साथ बहुत जुल्म किया है—मुझे माफ़ करदे······और देख मेरी एक निशानी है·······मेरा टाँगा-घोड़ा ·······उसका ख़याल रखना·······और चुन्नी बेटे के सर पर हाथ फेर कर कहना —अब्बू ने तुझे प्यार भेजा है ।"

अब्बू मर गया—नीती का सब कुछ मर गया । मगर वह हौसले वाली औरत थी । इस दुख को उसने सहन कर ही लिया । घर में अकेली पड़ी रहती

थी । शाम को दीना आता था और उसे दम-दिलासा देता था और कहता था —"कुछ फ़िक्र न करो भाभी, अल्लाह् मियाँ के आगे किसी का बस नहीं चलता । अब्बू मेरा भाई था·····मुझसे जो हो सकता है खुदा के हुकुम से करूँगा ।"

शुरू-शुरू में तो नीती न समझी । पर जब उसके इद्दत के दिन पूरे हुए तो दीना ने साफ़ शब्दों में कहा कि वह उससे शादी करले । यह सुनकर नीती के जी में आई कि वह उसको धक्का मारकर बाहर निकाल दे । मगर उसने सिर्फ़ इतना कहा—"भाई मुझे शादी नहीं करनी ।"

उस दिन से दीना के रवैये में फ़र्क़ आगया । पहले शाम को बिना नागा पाँच रुपए अदा करता था । अब कभी चार देने लगा, कभी तीन । बहाना यह कि बहुत मन्दा है । फिर दो-दो तीन-तीन दिन ग़ायब रहने लगा । बहाना यह कि बीमार था या टाँगे का कोई कल-पुर्ज़ा ख़राब होगया था इसलिए जोत न सका । जब पानी सर से निकल गया तो नीती ने दीना से कहा—"भाई दीना ! अब तुम तकलीफ़ न करो । टाँगा-घोड़ा मेरे हवाले कर दो ।"

बड़ी टालमटोल के बाद अन्त में बुरा मुँह बनाकर टाँगा-घोड़ा नीती को दे दिया । इसने माझे के सुपुर्द कर दिया, जो अब्बू का दोस्त था । उसने भी कुछ दिनों के बाद शादी की प्रार्थना की । नीती ने इन्कार किया तो उसकी आँखें बदल गईं । सहानुभूति आदि सब हवा होगई । नीती ने उससे भी टाँगा-घोड़ा वापस लिया और एक अंजाने कोचवान के हवाले कर दिया । उसने तो हद ही करदी । एक शाम पैसे देने आया तो शराब के नशे में धुत था । ड्योढ़ी में क़दम रखते ही नीती पर हाथ डालने की कोशिश की । नीती ने उसको खूब सुनाई—और काम से हटा दिया ।

आठ-दस दिन टाँगा-घोड़ा बेकार तबेले में पड़ा रहा । घास-दाने का ख़र्च अलग ; ऊपर से तबेले का किराया । नीती अजीब उलझन में थी । कोई शादी की प्रार्थना करता था ; कोई उसकी अस्मत पर हाथ डालने की कोशिश करता था ; कोई पैसे मार लेता था । बाहर निकलती थी तो लोग बुरी निगाहों से घूरते थे—एक रात उसका पड़ोसी दीवार फाँदकर आ गया और हाथापाई

करने लगा। नीती सोच-सोचकर पागल होगई कि क्या करे।

एक दिन बैठे-बैठे उसे विचार आया—"क्यों न टाँगा मैं आप ही जोतूँ—आप ही चलाऊँ"—अब्बू के साथ जब वह सैर को जाया करती थी तो टाँगा खुद ही चलाया करती थी। शहर के रास्तों से भी परिचित थी। लेकिन फिर उसने सोचा—"लोग क्या कहेंगे?"—इसके जवाब में उसके दिमाग़ ने कई दलीलें दीं—"क्या हर्ज है—क्या औरतें मेहनत-मज़दूरी नहीं करतीं—ये कोयले वालियाँ—ये दफ़्तरों में जाने वाली औरतें—घर में बैठ कर काम करने वालियाँ तो हज़ारों होंगी—पेट किसी बहाने से पालना ही है।"

नीती ने कुछ दिन सोच-विचार किया। अन्त में निश्चय कर लिया कि वह टाँगा खुद चलायेगी। उसको खुद पर पूरा भरोसा था। अतएव अल्लाह का नाम लेकर वह तबेले पहुँच गई। टाँगा जोतने लगी तो सारे कोचवान हक्का बक्का रह गये। कुछ मजाक़ समझकर खूब हँसे। जो बुज़ुर्ग थे, उन्होंने नीती को समझाया कि देखो ऐसा न करो। यह उचित नहीं। मगर नीती नहीं मानी। टाँगा ठीक-ठाक किया। पीतल का सामान अच्छी तरह चमकाया। घोड़े को खूब प्यार किया। और अब्बू से दिल-ही-दिल में प्यार की बातें करती तबेले से बाहर निकल गई। कोचवान आश्चर्यचकित थे क्योंकि नीती के हाथ निपुण थे। जैसे वह टाँगा चलाने की कला पर छाई हुई है।

शहर में एक तहलका मच गया कि एक सुन्दर औरत ताँगा चला रही है। हर जगह इसी बात का चर्चा था। लोग सुनते थे तो उस समय की प्रतीक्षा करते थे जब वह उनकी सड़क पर से ग़ुज़रेगा।

शुरू-शुरू में तो मर्द-सवारियाँ झिझकती थीं मगर यह झिझक थोड़ी देर में दूर हो गई—और खब आमदनी होने लगी। एक मिनिट के लिए भी नीती का ताँगा बेकार न रहता था। इधर सवारी उतरी, उधर बैठी। आपस में कभी-कभी सवारियों की लड़ाई भी हो जाती थी—इस बात पर कि नीती को पहले किसने बुलाया था।

जब काम ज़्यादा हो गया तो नीती ने ताँगा जोतने का समय निश्चित

कर लिया। सुबह सात से बारह बजे तक और दोपहर को दो से छः बजे तक। यह सिलसिला बड़ा सुखदायक सिद्ध हुआ। चुन्नी भी ख़ुश था। मगर नीती अनुभव कर रही थी कि अधिकांश लोग केवल उसकी निकटता प्राप्त करने के लिए उसके ताँगे में बैठते थे। बेमतलब, बिना उद्देश्य उसे इधर-उधर फिराते थे। आपस में गन्दे-गन्दे मज़ाक़ भी करते थे। सिर्फ़ उसको सुनाने के लिए बातें करते थे। उसको ऐसा लगता था कि वह तो खुद को नहीं बेचती लेकिन लोग चुपके-चुपके उसे खरीद रहे हैं। इसके अलावा उसको इस बात का भी एहसास था कि शहर के सारे कोचवान उसको बुरा समझते हैं। इन तमाम एहसासात के बावजूद वह व्याकुल नहीं थी। अपने आत्म-विश्वास के कारण वह सन्तुष्ट थी।

एक दिन कमेटी वालों ने नीती को बुलाया और उसका लायसेंस ज़ब्त कर लिया। कारण यह बताया कि औरत ताँगा नहीं चला सकती। नीती ने पूछा—"जनाब औरत ताँगा क्यों नहीं चला सकती ?"

जवाब मिला—"बस, नहीं चला सकती, तुम्हारा लायसेंस ज़ब्त है।"

नीती ने कहा—"हुज़ूर आप ताँगा-घोड़ा भी ज़ब्त करलें। पर मुझे यह तो बतायें कि औरत ताँगा क्यों नहीं जोत सकती ? औरतें चरख़ा चला कर अपना पेट पाल सकती हैं; औरतें टोकरी ढो कर रोज़ी कमा सकती हैं; औरतें लैनों पर कोयला चुन-चुन कर अपनी रोटी पैदा कर सकती हैं। मैं ताँगा क्यों नहीं चला सकती ? मुझे और कुछ आता ही नहीं। ताँगा-घोड़ा मेरे खाविन्द का है। मैं उसे क्यों नहीं चला सकती ? मैं अपना गुज़ारा कैसे करूँगी ? हुज़ूर आप रहम करें। मेहनत-मजदूरी से क्यों रोकते हैं मुझे ? मैं क्या करूँ! बताइए ना मुझे।"

अफ़सर ने जवाब दिया—"जाओ, बाज़ार में जाकर बैठो, वहाँ ज़्यादा कमाई है!"

यह सुनकर नीती के अन्दर जो असल नीती थी, जलकर राख हो गई। धीरे से 'अच्छा जी' कहकर वह चली गई। औने-पौने दामों में ताँगा-घोड़ा

बेचा और सीधी अब्बू की क़ब्र पर गई। क्षण-भर ख़ामोश खड़ी रही। उसकी आँखें बिल्कुल सूखी हुई थीं जैसे वर्षा के बाद चिल-चिलाती धूप ने ज़मीन की सारी नमी चूस ली थी। उसके भिंचे हुए ओंठ खुले और वह क़ब्र से सम्बोधित हुई—"अब्बू, तेरी नीती आज कमेटी के दफ़्तर में मर गई।"

यह कहकर वह चली गई। दूसरे दिन अर्ज़ी दी, उसको अपना शरीर बेचने का लायसेंस मिल गया।